तत्कालीन सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्थितियां एवं साहित्यिक चेतना

हिन्दी साहित्य का समस्त मध्यकाल राजनीतिक दृष्टि से भारत मे मुस्लिम साम्राज्य के क्रमिक उत्थानपतन का युग है ।[1] यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है चूंकि साहित्यकार अपने आसपास के वातावरण से अछूता रहकर साहित्य सृजन नही कर सकता है । वह अपने चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं का चाहे अनचाहे अपने लेखन में चित्रण कर ही देता है जिस काल की जैसी भी राजनीतिक परिस्थिति होती है उसका सीधा प्रभाव कवि या लेख कके काव्यालेख में दिखाई देता है । इसीलिए उसकाल में विभिन्न वंशों दास खिलजी, तुगलक सैय्यद, लोदी मुगल आदि वंशों के व्यक्ति राज गद्दी पर प्रतिष्ठित हुए किन्तु सत्ता का यह परिवर्तन सामान्य वातावरण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है । मुस्लिम शासकों की जिन प्रवृत्तियों ने इस काल के साहित्य एवं सांस्कृतिक को सर्वाधिक प्रभावित तथा उत्प्रेरित किया उन सभी में तीन (1) धार्मिक दमन (2) राज्य विस्तार, युद्ध की प्रवृत्ति (3) ऐश्वर्य वृद्धि एवं विलासिता की प्रवृत्ति।[2]

मुस्लिम शासकों के राज्य का आदर्श इस्लाम के सिद्धान्तों से अनुप्राणित था । जिनके अनुसार किसी भी गैरमुस्लिम को मुस्लिम राज्य मे जीवन यापन करने का अधिकार नही था । उस काल मे उनकी नीति की वजह से गैरमुस्लिम जनता का ''इस्लाम या मौत'' मे से एक को स्वीकार करने के लिए बाध्य करते रहते थे ।[3] कुछ शासको ने इस के स्थान पर मध्यम मार्ग अपना लिया था जिसके अनुसार गैरमुस्लिम जनता जजिया कर देकर अपने जीवित रहने के अधिकार खरीद सकती थी । यह कर इतना भारी था तथा इस क्रुरता के साथ वसूल किया जाता था कि उससे विवश होकर निर्धन लोग कई बार धर्मपरिवर्तन कर लेते थे और मुसलमान बन जाते थे । वस्तुतः जजिया कर का मूल उद्देश्य भी यही था । यद्यपि अकबर तथा उसके परवर्ती कुछ शासकों ने इस कर को हटा दिया था किन्तु

औरंगजेब ने पुनः इसे लागु कर दिया था तथा जिन लोगों ने इसके विरोध में प्रार्थना की उन्हें हाथी से कुचलवा दिया गया ।[4]

डॉ. राजपति दीक्षित ने लिखा है - मरूस्थलयी अरबो ने अचानक आक्रमण करके सिन्धप्रान्त को जीता इसके उपरान्त कोई ढाइसो वर्षों तक भारत में मुसलमानो का आक्रमण नहीं हुआ । इस बीच हिन्दु राजाओं की मअहमहममिका नही घटी हां हिन्दु संस्कृति कला और सम्पन्नता का विकास महाराजा यशोवर्जन बीसलदेव मुञ्जभोज आदि के बड़े राज्यों में पर्याप्त हो गया था । कराल काल की गति बलवान होती है हिन्दु राजाओं के बाहुबल से लालितपालित जिस संस्कृति जिस कला जिस श्री जिस सम्पन्नता का विकास हुआ उसे भस्म करने के लिए खूंखार और असभ्य अफगानों के आग्रमण की भयावह ज्वाला प्रज्वलित हुई और वह दिन दूगनी रात चौगनी होकर देश की शान्ति और सम्पन्नता क भस्मीभूत करने लगी ।[5] विदेशी आक्रमण ने भारतीय जनता को एक नये धर्म संकट में ही डाल दिया था वैसे विदेशी आक्रमण इतिहास मे कोई नयी वस्तु नही थे गुप्त साम्राज्य के समय से ही हूण शक आदि जातियों को आक्रमण होते रहे है ।[6] इस ज्वाला की लपेट मे हिन्दुस्तान बार-बार आग रहा बुत परस्ती मूर्तिपूजा का अन्त करने की तमन्ना रखने वाले हिन्दुओं के साथ युद्ध करने को जिहाद समझने वाले महमूद गजनवी के बारह हमले भारत पर हुए और इनमे से तीन चार आक्रमणों में देश का विफल वैभव लुटेरों के हाथ लगा ।[7] साथ ही साथ एक से बढकर एक भव्य देवालय विद्यालय तथा मठ ढहाकर गर्त मे मिला दिये गये । कितने प्राणी तो तलवार के घाट उतार दिए गये और कितने ही गुलाम बनाकर गजनी ले जाये गये । उसके बाद मुहम्मद गौरी के साथ आक्रमणों ने देश की दशा और भी चिन्तनीय कर दी अतः मे देश अफगानों के कुटिल शासन मे ग्रसित हो गया[8] इन आदिम मुसलमानों के जिन भिन्न-भिन्न सात राजवंशों ने राज किया वे सभी अपनी पीरशाही हुकुमत से बाज आनेवाले नही थे । वे इसलाम की कीर्ति प्रशस्त करने के लिए हिन्दुओं को सतत कष्ट देना और मंदिरों को चूर करना अपना

कर्तव्य समझते थे । इन सब मैं कुछ तो इतने कट्टर और धर्मान्ध थे कि उन्होंने हिन्दुओं को न तो कोई नया मंदिर बनाने दिया और नही किसी जीर्णशीर्ण मंदिर की मरम्मत करने दी । सिकन्दर लोदी की भांति कितने ही मूर्ति पूजा से इतने चिढते थे कि उन्होंने मंदिरों का नामोनिशान तक मिटा देना चाहा था ।

इन आक्रमणों से श्रुति सम्मत धार्मिक समाज को बडी ठेस भी पहुंची थी ।[९] परन्तु हिन्दु जनता निरीह थी वह अपने सांस्कृति धरोहरों को नष्ट होता हुआ देख रहा था । उसके सामने उन सभी अत्याचारों को सहन करने के अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नही था । क्योंकि इन विविध राजवंशों में ऐसा कोई नही दिखाई पड़ता जो धार्मिक पक्षपात से पूर्णतः अर्द्धत हो ।[10] विजितों को गुलाम बनाने या उन पर जजिया कर लादने की कट्टरता कई मे थी । जजिया की वसूली मे जिम्मी[11] (यह उन हिन्दुओं की संज्ञा थी जो इस्लाम धर्म मे आस्था न रखने के कारण दण्ड स्वरूप जलिया कर देते थे) बेचारों को कितनी भत्सनाएँ सहनी पड़ती थी इसे उनका हृदय ही जानता था । कुछ बादशाहों के शासनकाल मे तो कुछ ब्राह्मण लोग इससे मुक्त थे । पर चौदहवें शतक में फिरोज तुगलक ने ब्राह्मणों के लाख हाथ जोड़ने पर भी उन्हें इस कर से वंचित न रहने दिया । अपनी इस्लामी कट्टरता के कारण प्रायः इन सभी मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं पर अत्याचार किये और उन्हे शासन प्रबन्ध में किसी प्रकार का विशेष अधिकार नही दिया । यही नही अनेक हिन्दुओं की कुलकांति भी हटपूर्वक मिटाई । उनकी बहू-बेटियों को बलपूर्वक छीनना अपना कर्तव्य समझा। अलाउद्दीन जैसे नितान्त निरंकुश शासन के लिए तो यह कार्य सामान्य ही था पर उसकी देखा-देखी अन्य सुलतानों ने भी इसके कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये ।

शासन कुल मिला के प्रजा के सामाजिक नही करते थे । प्रजा के प्रति उन्नयन के प्रति उदासीन था । उनके लिए किसी भी हिन्दु की बेटी बहु की इज्जत की कोई किंमत ही नही थी । चौदहवें शतक

मे तुगलक शाह ने बड़ी निर्दयता के साथ राना मलभट्टि की दुहिता का अपहरण किया था ।[12] उस काल में जनसामान किसी भी अत्याचार का विरोध नही कर सकती थी । जब उच्चवर्ग यह सब कर रहा था तब अवर्ण जनसमूह अपने आक्रोश को सहने करते-करते तंग आ चुकी थी व अपने आक्रोश को प्रकट करने के लिए छटपटाने लगी थी ।[13]

एक ओर तो मुसलमान बादशाहों की निरंकुशता उनकी स्वेच्छाचारिता और धर्मान्धता देश मे अशान्त विपन्न लोगों की आहे निकल रही थी दूसरी ओर वे बेचारे नाना प्रकार के आन्तरिक विद्रोहों तथा बाहरी आक्रमणों से निरन्तर भयभीत रहते थे ।[14]

जनता इतनी तनावग्रस्त रहने लगी थी कि उनका सामान्य जनजीवन अस्तव्यस्त हो चुका था । युगलशासन सैनिक प्रकृति का था । केन्द्रियशासन प्रणाली मे जनता या प्रजा का सम्बन्ध राजा के साथ सीधा और निकट का नही रह पाता । इस शासन के प्रमुख पूर्जे पराभुत राजा थे । वे प्रजा के प्रति अपने किसी प्रकार के नैतिक दायित्व का अनुभव ही नहीं करते थे । शासन कुल मिला के सामाजिक उन्नयन के प्रति उदासीन था । साहित्यकार परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होता है बढ़ता संस्कार ग्रहण करता प्रेरणा प्राप्ति करता, बनता और सामयिक परिस्थितियों को अपने काव्य में प्रतिबिम्बित अवश्य करता है । परन्तु इसमें साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि वह अपनी परिस्थितियों की उपज मात्र नहीं होता है वह उसका संशोधक और परिष्कारक भी होता है एक और वह युग का प्रतिनिधित्व भी करता है तो दूसरी ओर वह युग का निर्माण भी करता है ।[15]

मनसबदारी अरब और फारस के राज्यादर्शों में ढली एक सैनिक व्यवस्था ही थी ।[16] या कहा जा सकता है कि दूसरे शब्दो में तुलसी का समकालीन सकाम शासन कि निरंकुशता और न्याय एवं उन्नयनं सम्बन्धित उदासीनता से ग्रस्त था ।[17] सभी ओर अनेच्छिक कार्य हो रहे थे, उसके साथ मे यह शासक विलासी भी था । सैनिक की

रक्षा सम्बन्ध आवश्यकता भी व्यय साध्य होती है और शासक की विलास वृत्ति भी अर्थ व्यवस्था पर एक भार बन जाती है ।

और उस भार को जनता को ही वहन करना होता था इस लिए प्रजा कि दशा अवनत थी । केवल दरबारी संस्कृति और कलाविलास उन्नतिशील थे प्रजा का इनसे दूर तक का भी सम्बन्ध नही था[18] प्रजा के दुखों को दूर करनेवाला उनको सांत्वना प्रदान करनेवाला कोई भी नही था सब अपने आप में मग्न थे । सारी प्रजा उपेक्षित दुर्भक्षग्रस्त और क्षुधार्त थी ।[19]

कलि बारीहिं बार दुकाल परै
बिन्नू अन्नदुखी सब लोग मरे ।[20]

प्रजा का सभी ओर से शोषण हो रहा था उसकी आर्थिक दशा बिलकुल खराब हो चली थी । शासकीय और सामंतीय शोषण ने प्रजा की आर्थिक दशा को शोचनीय बना दिया था । सभी वर्ग एक दुरवस्था को भोग रहे थे । किसान, वैष्य, सभी दुःखी थे ।[21]

खेतीन किसान को - भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिण न चाकर कों चाकरी
जीवि का विहीन लोग सीधमान सोच बस
कहै एक एकन सौ कहा जाई का करी ।[22]

संक्षिप्त रुप से कहा जाय तो मुस्लिम शासन मूलतः सैनिक और कट्टर साम्प्रदायिक इसलामी तथा अराजकता, विषमता एवं अन्याय उसके अंग थे । राजा व प्रजा तथा प्रजा व प्रजा के बीच बड़ी गहरी खाइयाँ थी । एक ओर बड़े बड़े मनसबदार नवाब सरदार सूबेदार, जागीरदार आदि भोगविलास में मस्त रहते थे तो दूसरी ओर मुसलमान प्रजा निर्भय व नशंस थी तो दूसरी ओर हिन्दु प्रजा मुस्लिम राजा और मुस्लिम प्रजा से सदैव सशंकित रह जीवन निर्वाह करती थी। दूसरी ओर स्वेच्छाचारी मुसलमान हिन्दुओं की बहूबेटियों बहिन भानजियों की बेइज्जती करने अथवा उनका दीन धरम बिगाड़ने मे निडर रहते

थे तो दूसरी ओर हिन्दु मुसलमान स्त्रियों को आंख उठाकर देखने मे भी भयभीत रहते थे । एक ओर मुसलमानों पर कोई भी धार्मिक कर नही लगता था तो दूसरी ओर हिन्दु प्रजा जजिया आदि धार्मिक करों के बोझ से दबी जा रही थी ।[24] एक ओर तलवार का बल और राज सम्मान का प्रलोभन बुतपरस्त व काफिर कहे जानेवाले हिन्दुओं को मुसलमान बनाने मे लगे थे तो दूसरी ओर हिन्दुजनता गम खाकर अपने खोये हुए कोई बहिनों का सदा बहिष्कार कर धर्मध्वजी कहलाने का पाखण्ड कर रहे थे । कही देवमूर्ति का भंजन दिखाई देता था तो कहीं पर देवालय मठ आदि गिराकर उनके स्थानों पर मस्जिदों को खड़ा किया जा रहा था व वहां पर कुरानों की आयतों को पढा जा रहा था । ऐसा मालूम होता था कि मुसलमानों अपनी अनीति को धर्म का चोंगा पहनाकर रखा हो और हिन्दुओं ने अपनी कायरता को सहिष्णुता का ।

''यथा राजा तथा प्रजा'' वाली कहावत के अनुसार उस समय मुसलिम जीवन मे अधिकतर तथा उसके प्रभाव में आ जानेवाले कुछ हिन्दु जीवन मे अन्शतः असंयम सम्पतिहरण विलासिता मादक पदार्थ सेवन आदि कुरीतियों तथा अत्याचारों का ही बोलबाला दिखाई दे रहा था । तुलसीदास जीने इसी कों रावण राज्य के रूप में प्रस्तुत किया है ।[25]

इस्लाम जो एक दूसरी जीवन पद्धति लेकर आया था वह मूर्तिपूजा के नाम पर पननपेवाले बहुदेववाद, वर्ण की आड़ में विकसित होती निर्मम जाति व्यवस्था को प्रभवित कर सकने मे असमर्थ कहा ।[26]

तुलसीदास जिस मध्यकाल की उपज है उसकी पहचान बहुत आसान नही है क्योंकि उसमे ज़िन्दगी कई पर्तों में चलती दिखाई देती है । एक और शहंशाह के इर्दगिर्द जुड़नेवाला सामन्ती समाज है जिसमे प्राप्तपति अथवा सूबेदार, जागिरदार, जमींदार राज्य के सर्वोच्च अधिकारी अमीर उमराव सभासद है तो दूसरी ओर खेती में जुड़ा हुआ कृषक समाज व्यापार मे उलझा वणिक वर्ग धर्म की कर्मकान्डी

व्यवस्था के नियमक पुरोहित तथा अन्य पेशो में लगे हुए सामान्यजन अकबर जहांगीर के समय को लेकर कई बार किसी स्वर्णकाल की कल्पना की जाती रही है पर यह गलत साक्षात्कार है[27] क्योंकि यह प्रश्न है कि आखिर राजवैभव जिस विशिष्ट समाजका प्रतीक है वह एक विशाल देश की जनसंख्या का कितना प्रतिनिधित्व करता है । साम्राज्य अपनी सीमाओं में दूरतक फैला हुआ था कठोर शासन (केन्द्रिय) के कारण उपर-उपर शान्ति नजर आती थी सैनिक शक्ति के कारण बाह्य आक्रमण का खतरा भी कम था । अकबर के भूमि सुधारों का लाभकृषक समाज को किस सीमा तक मिला यह विचारणीय है।

केन्द्रिय सत्ता के बावजूद मुगलकालीन कृषि भूमि में ऐसे अन्तर्विरोध थे कि संघर्ष अनिवार्य थे और शाही मुगल व्यवस्था के भीतर उनका समाधान संभव न था । दो शताब्दियों तक उसमें स्थिरता बनी रही पर अधिकाधिक संघर्ष उपजते गए, भूमि पर नियंत्रण रखनेवालों विभिन्न वर्गों के हितों की आपसी टकराहट हुई इस अवस्था को देखते सें ज्ञात हुआ कि[28] मध्यकालीन राजनीति का एक मुख्य अन्तर्विरोध यही है कि बाहर के देखने पर शान्ति सी नजर आती है पर भीतर भीतर स्वार्थों की टकराहट जो सामन्तवाद की स्वाभाविक स्थिति है ।[29] प्रो.इरफान हबीब ने इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा है कि मसबदारी जागीरदारी पर आधारित युगल साम्राज्य मे कठोर सत्ता के कारण स्वामिभक्ति प्रदर्शित करने की विवशता थी पर एक भी दुर्बल क्षण पाकर विशिष्ट वर्ग अपनी महात्वाकांक्षा की पूर्ति मे चूकता नही था । इसी के द्वारा कृषक समाज का निर्मम शोषण भी होता था यहां तक कि किसान अपने बीवी बच्चे और जानवरों को बेचने के लिए विवश थे ।[30]

वैभव कुछ विशिष्ठ वर्गों तक ही सीमित रह गया था । जनसामान्य दुःखी व असंतुष्ट ही था । इस प्रकार मध्यकालीन समाज अपने अन्तर्विरोधों में उलझा हुआ था और शोषण की प्रक्रिया जारी थी ।[31] जब भी शोषण होता है शोषित वर्ग कुछ समय तक ही उसे स्वीकार करता है । कुछ समय बाद तो उसका खुला विरोध होने ही लगता है और इसी प्रकार इस समय में विद्रोह की आवाज उठी तब उसके

मूल में कोई महत्वाकांक्षी व्यक्ति था । हिन्दु सामन्तवाद इस्लाम के आगमन के पूर्व अपना एक वृत पूरा कर लेता है और जब एक नये धर्म से उसकी टकराहट होती है तब तक वह आत्म केन्द्रित होकर समय समय के यथार्थ से पलायन कर जाता है । इसीलिए सल्तनतकाल मे धर्म का कर्मकाण्डी मिथ्या आडम्बर इस सीमा तक बढ़ जाता है कि संत काव्य को पूरी शक्ति के आक्रमण करना पड़ताहै। कर्म विभाजन पर आधारित वर्ण व्यवस्था यहां तक विकृत हो जाती है कि पंडित पुरोहित समाज के नियामक बनते हैं और क्षत्रिय शासकों को भी उन्हें स्वीकार करना पड़ता है ।[32] उस समय के शासक चूंकि इस्लाम थे व इस्लाम जो कि एक दूसरी जीवन पद्धति लेकर आया था वह मूर्तिपूजा के नाम पर पनपने वाले बहुदेववाद, वर्ण की आड़ में विकसित होती निर्मम जाति व्यवस्था को प्रभावित करने मे असमर्थ रहा ।[33] कोई भी परिस्थिति हो जनता अधिक समय तक तनाव की स्थिति में नही रह सकती उसी प्रकार हिन्दु मुस्लिम जातियां भी बहुत समय तक तनाव की स्थिति मे नही रह सकती थी और सुलतानों की कठोर धर्मनीति के होते हुए भी ग्राम समाज में किसी न किसी तरह का भाईचारा मौजूद था कम से कम वहा अधिक तनाव का वातावरण नही था । अकबर का समय आते-आते सांस्कृतिक आदानप्रदान की प्रक्रिया काफी बढ चली थी और केन्द्रिय सत्ता के संरक्षण मे उसे गति मिली । उल्मा की धार्मिक शक्ति कम कर देने से राजनीतिक प्रश्नों में धर्म एक निर्णायक तत्व नही रह गया था एवं एक सम्मलित प्रजा की बात की जाने लगी थी[34] अकबर नामा के अनुसार शासन के नवे वर्ष मे एक कार्य यह हुआ कि हिन्दुओं से जो जलिया कर लिया जाता था वह बन्द कर दिया गया ।[35]

उन्हीं दिनों प्रगतिशील विचारधारा के सभी विद्वानो नें यह स्वीकारा कि मध्यकाल में सांस्कृतिक समन्वय सहिष्णु विचारधारा उदार दृष्टिकोण, सामाजिक सुधार, मानवीय बन्धुत्व का महत्वपूर्ण कार्य कवि व रचनाकारों द्वारा सम्पन्न हुआ ।[36] उन्ही दिनों अकबर द्वारा हिन्दु राजकुमारियों से वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किये गये तथा दीन एइलाही का

A MEHTA LIBRARY

महत्व भी स्थापित किया गया । फिर भी इन सबके बावजूद कि हिन्दु मुस्लिम संस्कृतियों ने एक दूसरे को प्रभावित किया परन्तु मुगलवकाल का भारत राजनीतिक एवं धार्मिक स्तर पर सामाजिक दृष्टि से असंगठित था और अखिल भारतीय स्तर पर उसमें कोई सामंजस्य नहीथा । हिन्दु मुस्लिमों के अपने-अपने पृथक धर्म थे सामाजिक राजनीतिक ऐक्य नही था इस प्रकार उस काल में भारत एक बिखरा देश था एक असंगठित समाज था हर तरह से असमानता थी हर ओर निराशा थी ।

तुलसी दास जीने जिस युग में अपनी मानस रची थी उस समय चारो ओर घोर अशान्तीमय वातावरण था । जनमानस सदैव चिन्तित व परेशान था हर ओर अराजकता ही दिखाई देती थी । राजा और प्रजा के बीच आपसी स्नेह व प्रेम का सर्वथा अभाव था हर व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति मे ही लगा हुआ था । जनता का चारों ओर से शोषण हो रहा था ।

तुलसीदास जीने जिस युग में पदार्पण किया घोर चिन्ता और अशान्ति व्याप्त थी यत्रतत्र बाह्य आक्रमणों से जनता त्रस्त और भयभीत थी अकबर ने यद्यपि शक्तिशाली विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी तथापि साधारण जनता को कोई सुख नही था । अकबर का शासन केन्द्रीकृत सैनिक एक तंत्र था पदाधिकारियों का चुनाव उनकी सैनिक योग्यता के आधार पर होता था ।[38] इन अधिकारियों से जनता का कोई विशेष सम्बन्ध नही था ये निजस्वार्थ को ही महत्व देते है । उन्हे जनता के लाभ अथवा उनकी परेशानियों से कुछं भी लेना देना नही था । केवल अपने स्वार्थों के लिए ही वे गरीब एवं निरीह जनता का शोषण करते थे । राज्य की ओर से कहने को सारी सुविधाएँ थी परन्तु हर व्यक्ति अपनी ही परेशानियों से कुछ भी लेना देना नहीं था केवल अपने स्वार्थों के लिए ही वे गरीब एवं निरीह जनता का शोषण करते थे ।[39] राज्य की ओर से कहने को सारी सुविधाएँ थी परन्तु हर व्यक्ति अपनी ही परेशानियों से उलझा हुआ था । राजघराने के लोग केवल अपने ऐशो आराम एवं विलासिता

के साधनों के ही जुटाना अपने कर्तव्यों का पालन करना समझते थे । अकबर यूं देखा जाय तो सभी धर्मों के लोगों के प्रति उदार दृष्टिकोण न रखता था फिर भी उनकी सामाजिक परिस्थितियों मे कही भी सुधार नजर नही आता था ।[40] चारों ओर अत्याचार व मनमानी का ही बोलबाला था । शासक निरीह एवं निरपराध जनता को कठोर से कठोर दण्ड देते थे ।

नृप पाप परायन धर्म नहीं
करि दंड विडंब प्रजा नितही[41]

उन्हे अपनी न्यायप्रियता एवं धार्मिक सहिष्णुता का जरा भी ध्यान नहीं था । हर ओर बुरी परिस्थिति थी । ब्राह्मणों, स्त्रियों, बालकों, वेदों सभी की खुली उपेक्षा की जाति थी । अनुशासन के स्थान पर उच्छृंखल का बोलबाला था । सभी का अनादर किया जाता था । सर्वत्र विश्रृंखलता, अव्यवस्था और अनुशासन हीनता का दौरा दौर था ।

श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ
संजुत विरति विवेक
तेहि परिहरीहे बिमाह बस
कल्पहिं पन्थ अनेक[42]

कलियुग मे वेद पुराणों की निन्दा करना साहित्यकारों का नित्य नियम बन चुका था ।

कलिमल ग्रमेधर्म सब
लुप्त भये सदग्रन्थ
दम्भिन निजमत कल्पि करि
प्रकट किये पहु पन्थ[43]

यह समय मुगल बादशाह हुमायु के प्रथम शासनकाल के अन्तर्गत आता है इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास का कोमार्य हुमायुँ के पतन और सूरवंश के अभ्युत्थान, शेरशीह के सुव्यवस्थित शासन इस्लाम

शाह के निरंकुश आतंकवादी राज्य संचालन परवर्ति सूरवंश के शासकों के आलस्यप्रिय विलासमय एव अकर्मण्यतापूर्ण जीवन यापन तथा हुमायुँ द्वारा मुगल शासन के पुनःस्थापन का साक्षी था । अकबर के शासन को भी गोस्वामी जीने उसकी तीनों परिस्थितियों में देखा था ।

(1) पहले (बैरमखा) की संरक्षात में :-

(2) फिर हरम (अन्तःपुर की बादियों छात्रियों के प्रभाव में

(3) आत्मनिर्भरता के उत्कर्ष में ।

ज़हांगीर का शासन जो न्याय श्रृंखला के उच्च आदर्श से प्रारम्भ हुआ विलासिता ऐन्द्रियता और क्रूरता मे विपरित होते हुए भी गोस्वामी जीने अपनी आखों से देखा था ।

राजनीतिक अस्थिरता जो बढकर कभी कभी अराजकता की संज्ञा धारण कर लेती थी चलचित्र के समान उनके दृष्टिपथ पर उभरी थी। इस अस्थिरता और अराजकता की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसके प्रत्यक्ष प्रेरक और उत्पादक, अफगान और मुगल थे जो वृत्ति के लिए इस देश में राजसत्ता स्थापित करना चाहते थे । भारतीय राजे और सामन्त विशेषतया सामान्यजनता इस राजनीतिक उत्थान पतन के प्रति सर्वथा उदासीन और निरपेक्ष थी ।[44]

शेरशाह से पराभूत हुमायूँ जब पश्चिम की ओर पलायन कर रहा था उस समय शेर शाह की भी स्थिति कुछ बहुत स्थिर और दृढ़ नही थी परन्तु भारतीय नरेशा द्वारा इस अवसर से लाभ उठाने की क्षमता का पता तो तब चलता जब उनमे शास्त्र उठाने का उत्साह था हौंसला होता इसके अभाव के कारण देश मे व्याप्त निराशा याकुष्ठा का वातावरण था ।

यू देखा जाय तो इस समय देश की स्थिति एक बन्धक रखी हुई वस्तु की तरह से निरीह हो चुकी थी वह अपनी इस दुर्दशा

का केवल मूक दर्शक मात्र बनकर रह गया था ।

देश के शासक उस पर होने वाले हर अत्याचार के मूकश दर्शक मात्र बनकर रह गये थे । उनका अस्तित्व केवल पाषाण प्रतिमा सदृश्य रह गया था ।

यह सकते का आलम राणा संग्राम सिंह के खानुवँकि निर्णायक युद्ध १६ मार्च १५१७ ई. मे बाबर से पराजित हो जाने के फल स्वरूप देश पर तारी हो गया था । मग्न हृदय राणा का जनवरी १५२८ मे निधन हो गया सांगा ख्याति प्राप्तयोद्धा था । उसकी बहादुरी से सारा देश परिचित था उसकी योग्यता और आकांशा और देश भक्ति ने आक्रमणकारियों को स्वदेश से निकाल बाहर करने के प्रयत्न करने के लिए विवश कर दिया ताकि देश की गर्दन कट्टी विदेशी शासनसत्ता के जुएँ मे न फंस जाए ।[45] उनके विचार से ही खानुवाँ युद्ध के राजनीतिक परिणाम भी महत्वपूर्ण रहे । विदेशी राज्य को मिटाने की राजपूतों की आकांशापूर्णतः समाप्त हो गई इसके पश्चात राजस्थान के शासकों ने उतरी भारत मे हिन्दू राज्य पुनःस्थापित करने का सम्मिलित प्रयत्न कभी नही किया ।[46]

उसी समय हुमायु व सूरवंश के शासकों के लगातार होनेवाले संघर्षों में विशेष रूप से भारत की दुर्दशा को स्पष्ट देखा जा सकता है ।

अकबर के राज्य काल में राजनीतिक और प्रशासनिक जीवन में हिन्दु सामन्त सरदारों का सहयोग फिर से होने लगा था कहीं वे उसके सहयोगियों के रूप में तो कहीं पर उसके विरोधियों के रूप में अपने अपने स्थानों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे थे।[47]

अफगान् और मुगल अस्थिरता एवं अराजकता की दूसरी विशेषता राजकुलों के पारिवारिक पक्षों की विडम्बतापूर्ण स्थिति थी इन राजवंशो में विशेष रूप से मुगलों मे गृहकलह पारिवारिक वैमनस्य और पारस्परिक स्वार्थपरता अपने उग्रतम रूप मे परिलक्षित होती है ।

इस स्वार्थपरक गृहकलह का रूप पहले मुगलवंश मे देखना चाहिए। बाबर की मृत्यु के अन्तरी आरम्भ मे तो हुमायु का उत्तराधिकार ही विवाद ग्रस्त हो गया । मोहम्मद मेहन्दी ख्वाजा नामक एक व्यक्ति को अमीरो ने हुमायु के प्रति द्वन्दी के रूप में खडा किया । मेहन्दी के अतिरिक्त मोहम्मद सुलतानमिर्जा और मोहम्मद जमान मिर्जा भी हुमायू के प्रीति साधी थे परन्तु इन सबसे अधिक उग्र विषम विषाक्त विरोध हुमायु को अपने भाइयों से प्राप्त हुआ । डॉ. इश्वरी प्रशाद के शब्दो में इन भाइयों ने अपने तात्कालिक क्षुद्र लाभ के लिए अपने वंश के अस्तित्व और मर्यादा का भी ध्यान नही रखा ।[48]

गुजरात युद्ध (सन १५३६) में जब हिन्दु वेग के हाथों बहादुरशाह के पराभाव की सम्भावना उपस्थित हुई तो हुमायूँ के भाई असगरी ने विद्रोह किया और वह अस्तबल से भाग आया सन् १५३९ ई. सन स. १५७६ के चौसा युद्ध में शेरशाह के विरूद्ध हुमायुँ जीवन मरण संघर्ष में संलग्न था उससे दूसरे हिदाल ने विश्वासघात किया निरहुत से हजां उसकी नियुक्ति की गई थी पलायन करके उससे न केवल हुमायू की दिल्ली आगरे से सम्पर्क श्रृंखला तड़ दी वरन आगरा वापस आकर कुछ पिड्डुओं के परामर्श से तत्सम्बन्धित घोषणा करके बादशाही का अभिनय करने लगा इस कुविचार मे ही उसने हुमायुँ के मान्य एवं शुभचिन्तक साधु शेख बहलोल की निर्मम एवं साधु शेख बहलोल की निर्मम एवं निद्य हत्या कर डाली एवं स्वयं किसी भी प्रकार से हुमायु की सहायता के लिए तैयार न हुआ ।

अपने भाइयों से ऐसा असहयोग पाकर यदि हुमायुँ चौसा के युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ तो इसमें उस समय की परिस्थितियाँ को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है ।

इस प्रकार हर प्रकार से हुमायूँ के पारिवारिक जीवन की कहानी अराजकता स्वार्थपरकता विश्वासघात और भातृद्रोह से ओतप्रोत है ।[49]

हुमायु के बाद अकबर ने भी विषम परिस्थितियों का सामना

किया था । इस के राज्य काल में भी बाह्य विरोधों और प्रतिरोधों के अतिरिक्त पारिवारिक विद्वेष और विद्रोह भी चलते रहे । प्रारम्भ में अन्तः पुरकी बांदियों छात्रियों की दुरभिसांधियों के कारण वैरमखा जैसा स्वामिभक्त कार्य कुशल और पराक्रमी व्यवस्थापक अपदस्थ होकर विपन्न परिस्थिति मे विश्वास घात से मारा गया यह घटना संवत १६१७ की है । उसके बाद १६३८ मे मिर्जा हकीम की मृत्यु तक अबर को चैन नही मिला । उसके अपने ही उसके दुश्मन बने रहे । उसकी वृद्धाअवस्था में उसके उत्तराधिकारी सलीम ने भी राज्य सत्ता प्राप्त करने मे जल्दबाजी दिखलाई एवं अपने ही पिता से विद्रोह किया यह गृह कलह तक ही सीमित न रहा । सलीम के पुत्र खुसरो ने अपने पिता को वंचित करके अपने पितामह अकबर से सीधा राज्याधिकार प्राप्त करना चाहा । सलीम के सत्तारूढ हो जाने पर भी वह अपने पिता को वंचित करने के विफल प्रयत्नों से उस समय तक विरत नी हुआ जब तक उसकी आखों को ही नष्ट करने का आदेश स्वयं जहांगीर ने नही दे दिया ।

जहांगीर का शासन न्यायशीलता से प्रारम्भ हुआ और विलासिता के गर्त में गिरकर रह गया । नूरजहा के परिणय के उपरान्त वह उसके हाथों की कठपुतली मात्र रह गया, नूरजहां के मातृकुल के लोगों का शासन में बोलबाला था ।[50] उस समय मुगल शासन दरबार और हरम सभी राजनीतिक उथल पुथल व षडयंत्रों के केन्द्र बने हुए थे । गोस्वामी तुलसीदास इन सभी परिस्थितियों को देखा एवं परखा था उनकी मानसिक स्थिति को इन सभी कारणों ने काफी हद तक प्रभावित भी किया होगा ।

मुगल शासक बाबर तथा हुमायु और उसके अन्य भाई राज्य प्राप्ति केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति मात्र के लिए करना चाहते थे। उन सभी के साथ साथ यह हुआ कि अनेकों विवाहों से उत्पन्न संतान के बीच आपसी वैमनस्य एवं ईर्ष्या द्वेष की भावनाओं का भी काफी जोर रहा ।

प्रत्येक शासक ने मुख्यतः कामवासना की तुष्टि और गौणतः राज्यसत्ता की पुष्टि के लिए बहु विवाह किये इनसे उत्पन्न सन्तति के बीच राज्यशक्ति और उससे सम्पन्नता प्राप्ति के लिए जो संघर्ष हुए वे मुगलों के उत्तराधिकार के स्पष्ट नियमों के अभाव में और अधिक उग्र और भयावहसिद्ध हुए । राज्यारूढ होने के लिए कोई भी साधन वर्ज्य निंघ अथवा अव्यवहार्य नही समझकर गया लक्ष्यप्राप्ति की ज्वाला में साधन के उचितानुचित का विवेक होम दिया गया परिणाम स्वरूप राज्यकुल अराजकता, स्वार्थ परता और विश्वासघात के न केवल केन्द्र बने वरन इन सबकें उद्‌गम और प्रेरणा स्थान भी वही थे ।[51]

इस परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से देखने परखने व समझने वाले कुछ संत व कवि थे । इनमे से एक तुलसीदास जी भी थे । देश को उन्होंने अपनी आंखो ही पतन के गर्त में गिरते देखा था । उसे महसूस करके ही उन्होंने अपने काव्य मे कलिकाल के वर्णन के रूप में इस विदेशी शासक विदेशी प्रजा व कठपुतली मात्र बने देशी राजाओं की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया था ।

गोड़ गवाँर नपाल कलि
भवन कहा महिपाल
साम न दाम न भेद कलि केवल दण्ड कराय [52]

नृप पाप परायण धर्म नही
करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितही[53]

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन[54]

अकबर के यहां ही नही जहांगीर के यहां पर भी राजपुत राजाओं की बेटियाँ पहुँच चुकी थी (महाराजा उदयसिंह बिकानेर के राजा, रायरामसिंह राजा जगतसिंह, रामचन्द्र बुन्देला आदि सभी ने जहांगीर से अपनी बेटियों के विवाह किये थे ।[55] इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय सारे हिन्दु राजा विवश थे और उनकी इस विवशता का दुरूपयोग मुगल बादशाह कर रहे थे । राजाओं में केवल मेवाड

के राजा राणा प्रताप ने अपनी मिट्टी की शान को रखा हुआ था।[56] उन्होंने कभी भी मुगल बादशाहों से अपने मंत्रीयपूर्ण सम्बन्ध स्थापित नही किये साथ ही साथ उन्हे यह भी अहसास दिलवाया कि वे भारत वर्ष पर अपना प्रभुत्व स्थापित नही कर सकते क्योंकि यहां महाराणा प्रताप जैसे वीर एवं स्वाभिमानी राजा मौजूद हैं । किसी भी देश या राष्ट्र के अभ्युदय अथवा पतन मे प्रमुख हाथ हुआ करता है वहां की राज्यसत्ता का । राज्यसत्ता जब अपने और प्रजा के बीच सन्निकट नैतिक सम्बन्ध समझकर उसकी उन्नति के लिए उत्तमोत्तम योजना करती चलती है तो देश या राष्ट्र का अभ्युदय उत्तरोत्तर होता रहता है । इसके विपरीत यदि राज्यसत्ता प्रजा से अपना विकृष्ट सम्बन्ध समझती है उसके प्रति अपने नैतिक कर्तव्यों की उपेक्षा करती है तो प्रजा का पतन नही होगा तो क्या होगा ?[57]

मुगलों का शासन सही मायने मे देखा जाय तो सैनिक शासन ही था उसे हम केन्द्रीय एकतंत्र शासन प्रणाली कह सकते हैं । वहां पर राजा एवं प्रजा के सम्बन्ध प्रेम व स्नेह के नही कहे जा सकते थे दोनों एक दूसरे के प्रति सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त थे । मुगलशासक सामाजिक उन्नति के प्रश्न समाज के उपर छोड़कर उससे विमुख रहते थे । शासन का लक्ष्य नितान्त संकीर्ण एवं भौतिक था।[58] मुगलशासन को यदि स्पष्ट रूप से कहा जाय तो वह अरब व फारस के बादशाहों के आदर्शों पर चला[59] वहां कि तरह इसमे भी मूलस्वरूप तो सैनिक शासन का ही था । यहां हर व्यक्ति सैनिक की तरह से फौज का सिपाही होता था । मानवता या दया से यहां पर कोई सरोकार नही था ।

अशान्ति और अव्यवस्था का समय था भारतीय संस्कृति को गहरी चोटे लगी थी और लगती जा रही थी ।[60] मुगलों के आधिपत्य के कारण भारतीय संस्कृति की जड़े खोखली हो रही थी । उस समय भारत की मूल सांस्कृतिक चेतन का पर मुसलमानी विचारधारा धाराओं में संघर्ष पूरी तरह से चल रहा था ।[61] चारों ओर नजता को अपना जम्बल कहीं नहीं मिल रहा था नहीं मायने भारतीय संस्कृति की रक्षा

की बडी आवश्यकता थी ।[62] तुलसीदास जी ने इस आवश्यकता की पूर्ति जैसी पूर्ति की वैसी पूर्ति तब से अब तक कोई नही कर सका मानस की रचना कर उन्होने भारतीय संस्कृति के प्राचीन समय से चले आ रहे भारतीय आदर्शों का प्रतिपादन करते हुए उन्हे सहज एवं सरल स्वरूप प्रधान करते हुए जन मानस की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए जनमानस की ही भाषा जो कि एक अनपढ गंवार या प्रबुद्ध दर्शक दोनों ही के लिए सुलभ थी ।

उन्होंने अपनी लेखनी से अपने समय मे दिखाई देनेवाली राजनैतिक सामाजिक एवं पारिचारिक व व्यक्तिगत आदर्शों को नवीन आकार मे ढाल कर सभी के लिए नवीन मार्गप्रशीत किया ।[63]

समाज को ऊंचे-नीचे ले जाने वाले तत्व कौन-कौन है इसका भी बड़ा सजग और और सचेत व्याख्यान किया है ।[64] तुलसी ने सत्य प्रेम त्याग और मंगल भावना ही वे तत्व है जो आदर्श समाज आदर्श परिवार और आदर्श राजनीति का निर्माण करते हैं ।[65] दूसरे शब्दों में चाहे समाज हो चाहे राष्ट्र हो, चाहे परिवार हो उसका मूल सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की त्रिवेणी का होना आवश्यक ।[66]

तुलसीदास जी जानते थे कि अकबर कालीन सामन्त सूबेदार व राजे राजा महाराजा सत्यं, शिवं, सुन्दर की त्रिवेणी कहां से बहा सकते हैं उनके आगे तो उनके निज स्वार्थों का पहाड़ ही इतना बड़ा था कि जिसे पार करने की आकांशा ही उसमें नहीं थे केवल आत्मसुख भोग विलास की लिप्सा ही उस काल का महामंत्र रह गया था । उनका यही ध्येय था । वे केवल अपने आपको विलासिता के साधन जुटाने में समर्थ समझने लगे । सभी ओर सम्राटों की नकल की जां रही थी ।

कवियों ने भी वीररस के प्रति आकर्षण के स्थान पर नायिकाओं के नखशिक वर्णन का चलन चल पड़ा था । सामान्तया व्यक्ति के देहान्त के बाद उसकी सारी सम्पत्ति राजा की हो जाती थी ऐसी

अवस्था में लोग जीते जी ही अपनी पूरी सम्पत्ति का उपयोग करना चाहते थे ।

कृपकों की दुर्दशा देखी नही जाती थी उनसे फसल हुई हो या नही लगान अवश्य लिया जाता था ।[67]

लगान वसूल करनेवाले कर्मचारी बेचारे किसानो को निचोड़ डालते थे । कृपकों की प्रधान आवश्यकताओं की उपेक्षा कर लगान सूल किया जाता था । लगान वसूल करने वाले छोटे छोटे कर्मचारी भी लुटेरो की भांति इन दोनों को नोचते खसोटते थे । कितने ही अन्यायपूर्ण कर लगाये गये थे । जिन्हे बेचारे किसान देते देते परेशान रहते थे। एक ओर जहां ये कर वसूल करने के लिए क्रूरता करते थे वहीं दूसरी ओर कभी कभी इन किसानों का दुर्भाग्य क्महान दुर्भिक्ष के रूप में भी अकाल ताण्डव किया करता था ।[68] आयात और निर्यात के साधनों का पूरी तरह से न होना भी लोगों के लिए उसी बात का कारण बन जाता था ।

दूसरी ओर राजाओं के मन मे अपनी प्रजा के प्रति पुत्रवत प्रेम नही था ।

राजा का प्रजा पर आन्तरिक प्रेम न होने के कारण नजाने कितने मनुष्य बे मौत भी मरते थे अन्न के बिना कितने ही तड़प तड़प कर मृत्यु के ग्रास बनते थे ।[69]

यह दशा एक यादों बार की ही नही थी वहां पर दुर्भित्रज्ञ तो बारबार पड़ते ही थे । एकदीबार महामारी ने भी अपने भैरव हुंकार से जहांगीर के साम्राज्य मे त्राही त्राही मचा दी थी । यह बिमारी सन, १६२४ तक वर्तमान थी ।[70] महामारी लाहौर से आरम्भ हुई और सरहिन्द दिल्ली आदि स्थानों पर हाथ साफ करती हुई अन्त मे उसी अन्तर्वेदी की पवित्र भूमि को भी अपनी संहार स्थली बनाया। इसने भी अगणित निरीह प्राणियों का नाश किया और विनाश में अधिकांश भाग हिन्दुओं का ही था ।[71]

इस स्थिति को देखते से यह पता चलता है कि हर ढंग से गरीब व हिन्दु जनता परेशान हो रही थी ।

दूसरी ओर हिन्दु धर्म के धार्मिक स्थानों पर बाह्य आडम्बरों का बोलबाला था । जगन्नाथपुरी व अय सभी जगहों पर पण्डितों ने अपनी सुविधानुसार नियम बना रखे थे । लोगों की धार्मिक भावनाओं का दुरूपयोग किया जाता था । उनको अन्धविश्वासों मे पकड़ा हुआ था सैंकडो लोग जान पूछकर अपने आपकी बली चढा देते थे कि ईश्वर हम पर प्रसन्न होंगे ''प्रथम दिन जब जगन्नाथ जी के दर्शन कराये जाते थे तो अत्यधिक भीड़ होती और उसमें इतनी कठिनाई से प्रवेश निगम होता कि बहुत से दूरस्थदेश से आने वाले थके मांदे तीर्थयात्री पिस कर मर जाते ।[72] ऐसे मरने वाले लोगों की ओर दया दिखाने के बजाय उपस्थित पण्डितों व अन्धविश्वासी लोगों को गलत मान्यता रहती की वे सब मुक्त हो गये हैं उन्हें इश्वर ने स्वयं अपने पास बुला लिया है । कुछ लोग तो धार्मिक जोश मे आकरं स्वयं अपने आप को इनके आगे डाल देते थे वे भी यही मानते थे कि ऐसा करने से जगन्नाथ जी प्रशन्न होकर हमे सदगति देंगे हमें पुनर्जीवन प्रदान करेंगे ।[73]

उस काल में धार्मिक भावना के वशीभूत होकर लोग कुछ भी करने के लिए तैयार होते थे । पण्डितों की बातों मे आकर लोग अपनी बेटियों को मंदिर में चढ़ावे की तरह से भेट मे दे देते उनके हृदयों में इस बात की अन्धश्रद्धा होती थी कि यदि हम अपनी बेटियों को भगवान को चढ़ा देंगे तो उनके सारे पाप नष्ट हो जायेंगे और उनके परिवार की सारी विपत्तियाँ दूर हो जायेंगी और उनकी बेटी जगन्नाथजी की पत्नी बन जायेगी । उनका कोमल भावनाओं को व्यभिचार का माध्यम बना लिया था ।[74]

दूसरी ओर सिद्ध व जोगियों से भारत भरा हुआ था । ये लोग भस्म रमाये अजीबों गरीब देश में बड़े बड़े वृक्षों के नीचे तालाबों के निकट राख लपेटे पड़े रहते थे । विचित्र मुद्रा में आसीन नग्न

और काले लम्बी जटाएँ और विशालनाखून धारी योगियों को देखकर जैसा भय लगता था वैसा शायद नरक को देख कर भी न लगेगा। बरानेवर ने इस प्रकार के अन्योन्य बहुत से साधकों का उल्लेख किया है ।[75]

तुलसीदास इन सभी प्रथाओं के विरोधी थे उन्होने इन सब बातों को संस्कृति के विरूद्ध आचरण करना माना है वैसे भी तुलसी का जन्म ऐसे समय मे हुआ था जब भारत मे इस्लामी शक्ति का सूर्यमध्याहन को पहुँच रहा था । शेरशाह हुमायूं अक्बर और जहांगीर के समकालीन थे । शेरशाह ने अपने अल्प शासनकाल में करव्यवस्था में सुधार किये नये राजपथों का निर्माण कराया तथा हिन्दुओं को बड़े-बड़े ओहदे दिये (१५२४ से ४५) हुमायूं (१५४५-५६) के समय मे पहली बार ईरानी भोगवाद संस्कृति का प्रवेश भारत वर्ष मे हुआ और नरइस्लामी सामंती संस्कृति का जन्म हुआ । चित्रकला वास्तुकला काव्य संगीत सभी क्षेत्रों में ईरानी प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता जाता है परन्तु अकबर के राज्य काल में १५५६-१६०५ मे समन्वय के जो प्रयत्न हुए वे भारतीय जीवन विचारधारा कला और संस्कृति को भारतीयता की दृढ भिति प्रदान करते हैं ।[76] अकबर चूंकि धर्म के मामले में अत्यधिक उदार था वैसे भी उसकी कई पत्नियाँ हिन्दु थी अतः उसका हिन्दु धर्म की और रूझान होना स्वाभाविक ही था । उसके राज्य के हिन्दु सामन्तों के प्रयास से तथा स्वयं सम्राट की उदार एवं सहिष्णु राजनीति के कारण मंदिरों का जीर्णोद्धार एवम् नवनिर्माण होता है और ध्रुपद धमार की गायकी संगीत के क्षेत्र में एक नई क्रान्ति प्रस्तुत कती है जो भाषा काव्यों पर अमिट छाप छोड़ती है अकबर के समय में इस्लामी राजदरबार संगीतकला और साहित्य के केन्द्र बनते हैं । उस काल की उच्चस्तरीय संस्कृति मर्यादावादी और आस्थाप्राण कही जा सकती है ।[77] अकबर की यह उदारता ज्यादा दिन तक नहीं चला सकी व संस्कृति भी बहुत दिन तक अपना लौकिक पार लौकिक तथा भौतिक आध्यात्मिक विकास नही कर सकी क्योंकि अकबर के बाद जहांगीर के आते ही पुनःइरानी भोगवादी संस्कृति तथा स्वच्छन्दतावादी

प्रवृत्तियों का बोलबाला होने लगता है ऐसे में ही तुलसीदास जीने उनकी आत्माभिव्यक्तिपरक तथा आत्मवृतात्मक रचनाएँ हमें प्राप्त होती है ।

तुलसी साहित्य में हमें जहांगीर कालीन समाज की संस्कृति का परिचय रामचरित मानस के असुरों के उत्कर्ष के रूप में दिखाई देता है तुलसीदास जीने जिस उत्पीड़न का वर्णन किया है वह भारतियों को अधकार युग की ओर ले जाता है पुनः उन्ही अत्याचारों की पुनरावृत्ति वे ही यातनाएँ वही सांस्कृतिक ह्रास का समय लौट आया था ।

तुलसीदास महाराणा प्रताप के समकालीन थे उन्होंने शताब्दियों से चले आते शिशोदिया वंश की शिथिलता को परखा था और उसके पीछे छुपी हुई अपार शक्ति को भी देखा था जिसमें अपारसाहस एवं आत्म विश्वास छुपा हुआ था । उन्होंने अपनी रामकथा के सन्दर्भ में जब देशाटन किया था तब रामेश्वरम एवं मानसरोवर की यात्राओं मं उन्हें हिन्दु जनता की अपराजित चेतना का परिचय मिलता है इसी लिए उन्होने रामकथा के माध्यम से आनेवाली पीढियों के लिए सांस्कृतिक साहस तथा त्याग और तपस्या का मार्ग प्रशस्त किया । उन्होने अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर रामकथा को अपने काव्य का माध्यम बनाते हुए जनमानस के लिए उनकी ही भाषा मे एक सर्वसुलभ एवं सहज रामचरित मानस की रचना की ।[78] उन्होंने भारतीय आध्यात्मिकता और मानववाद के आदिस्रोत उपनिषदों का आत्मबल लिया श्रीरामको परब्रह्म के रूप में स्थापित करने के आग्रह के साथ दृढ़ संकल्प लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करके नवीन जागरण फैलाया । चूंकि उस काल की ईरानी संस्कृति मे राज्यलिप्सा ईतनी अधिक तीव्र हो चुकी थी कि पिता पुत्र भाईभाई, बधुसखा जैसे रिश्तों का कोई महत्व नही रह गया था इन सभी बातों से आहत हो ज़रूरी तुलसीदास जीने उत्कर्षप्राण हिन्दु चेतना को नया देवता दिया जो लोकनायक और आदर्श मानव के समवत गुणों से विभूषित था तथा चक्रवर्ती सम्राट और महानयोध्या

के रूप में प्रतिष्ठित होने पर भी संतत्व के श्रेष्ठ आदानों से निर्मित था । भगवान राम और भागवत भक्त के रूप में उन्होंने भारतीय जीवनशिल्प की दो मुर्तियाँ तराशी । उन्होने स्वयं भरत सा जीवन जिया- जो उनके आदर्श थे परन्तु राम उनकी श्रद्धा के अन्यतमपात्र थे । उन्होंने उनके जीवन को मानवीय संस्कारों एवं मानवीय मूल्यों से ही सजाया सवांरा ।[79]

तुलसी साहित्य मे हमे भारतीय संस्कृति का वह स्वरूप दिखाई देता है जिसके कारण इस भारतवर्ष को सच्चे अर्थों मे सांस्कृतिक तीर्थों की श्रेणी मे प्रथम स्थान पर स्थापित कर दिया है । प्राचीन काल से ही भारत वर्ष मे विभिन्न जाति व उपजातियाँ रहती आई है इसे हम तुलसीदास व आदि कवि वाल्मीकि की रामकथाओं में स्पष्ट देख सकते हैं । वाल्मीकि रामायण मे हमें निषाद द्रविड़ आर्य किरात संस्कृतियों के उपादानों तथा मिथकों का समावेश मिलता है।[80] आचार्य शुक्ल ने कहा है - लोकविहित - आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खरे करने के लिए उन्होंने रामचरितका आश्रय लिया ।[81]

तुलसीदास अपने समय से खुश नही थे जो उन्होने देखा था व देख रहे थे उन्होंने उसी को कलिकाल के रूप में चित्रित किया है । उन्होंने भागवत के कलिकाल को ही अपना आधार बनाया है जो आज भी समसामायिक मालूम होता है ।

- भागवत मे शुकदेव जी कलियुग का वर्णन करते हुए परीक्षित से कहते हैं कि घोर कलियुग आने पर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया आयुबल स्मृति का लोप होता जायेगा । कुलीन वही कहलायेगा जिसके पास धन होगा, जो शक्तिमान होगा वह धर्म न्याय को अपने पक्ष में कर लेगा । छली कपटी व्यावहारिक समझे जायेंगे और ब्राह्मण जनेऊ से पहचाने जायेंगे । पण्डित वाचालता से जाना जायेगा । साधु दंभी पाखन्डी होंगे इतना ही नहीं; भागवतकार नेता यहां तक कहां है कि ध्यान के पीछे लघुकाय हों जायेंगे और अनावृष्टि का भी

प्रकोप । ऐसे में धर्म की रक्षा के लिए ईश्वर अवतार लेगा ।[82]

भागवत की इस उक्ति को तुलसीदास ने उस काल में समसामायिक माना था व आज भी वह ध्रुवसत्य की तरह से अटल दिखाई देती है । वह आज भी दृष्टिगोचर होता है । उत्तरकाण्ड में काक भुशुण्डि कहते हैं । कलिबारहि बार दुकालपरै बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे।[83]

वैसे ही कवितावली के उत्तरकाण्ड मे भी यही बात दोहराई है,
दिन दिन दूनौ देखि दारिदु दुकालु दुख दुरित दुराज सुखसृकुत सकोच है[84]
दुनी दुख दोष दरिद्र दली है[85]
या फिर तेहि कलिकाल बरप बहु बसेउ अवध विहगेस,
परेउदुकाल विपति बस तब मेगयउ विदेस,
गयउ उज्जैनी सुनुउरगारी,
दीन मलीन दरिद्र दुखारी[86]

कामधेनु धरनी कलि गोमर विकल जामतिन बई है ।[87] यहां तक कि धरती पर होनेवाले अत्याचारों में धरती भी इतनी त्रस्त हो चुकी है कि फसलें तक नहीं उग पाता है । इस संस्कृति के ह्रास के समय उन्होने केवल यही कहा है कि इन सबसे बचने को व्यक्ति कलियुग केवल नाम अधारा । परन्तु हर ओर ऐसे मे जहां पर खाने के ही लाले पड़ रहे हैं वह संस्कृति के उत्थान के लिए सोचने का समय ही किसके पास था । चारों ओर अराजकता का वातावरण पैदा हो गया था । सामन्ती ढांचेवाला शोषण पर आधारित उखड़ा उखड़ा मध्यकालीन समाज उनके संवेदनशील मानस को बारम्बार अहित कर रहा था और इसी का समाधान उन्होंने रामभक्ति मे पाना चाहते थे । परन्तु आंख बन्द करने से वास्तविकता से दूर नही हुआ जा सकता है इसलिए तुलसी दासने उस समय से अत्यधिक असंतुष्ट थे।

चारों ओर नीति नियमों का उल्लंघन हो रहा था वर्णाश्रम व्यवस्था छिन्नभिन्न हो रहीथी । कवि हृदय तुलसी ऐसे में कुछ समाधान पाना

चाहते हैं परन्तु उन्हें कुछ रास्ता नहीं सूझ रहा था ऐसे में ही उन्होने रामचरित मानस के द्वारा नवीन संस्कृति को प्रस्तुत किया जो कि प्राचीन भारतीय संस्कृति का ही वास्तविक स्वरूप था ।

उन्होंने कलिकाल मे रामनामी समाधान को प्रतिष्ठित किया है-

काल धर्म नहि व्यापहि ताही
रघुपति चरण प्रीति अतिजाही[८८]

ऐसे मेही तुलसी दास जीने राम चरित मानस मे कोल किरात भील आदि के माध्यम से इशारा किया है ।

तुम प्रिय पाहुन वन पगुधारे
सेवा जोग न भाग हमारे
देवकाहि हम तुम्हहि गोसाई
ईधन पात फिरात मिताई
यह हमारी अतिबड़ सेवकाई
लेहिन बासनबासन चोराई
हम जड़ जीव जीवगन धाती
कुटिल कुचाली कुमति कुजाती
पाप करत निसिबासर जाही
नहि पट कटि नहि पे अधाहि[८९]

वे सब भी राम के सम्पर्क मे आकर अपनी पुरानी आदतें छोड़कर प्रभु सेवा में लग जाते हैं तो जन सामान जोकि उनके मुकाबले तो अधिक संस्कारी व सुशील है वह क्यों नही भवसागर से तर सकता है ।

तुलसीदास के समीक्षकों के अनुसार तुलसीदास ने कलियुग के नाम पर अपने समाज का जो वर्णन करते हैं वह विशिष्ठ दृष्यों और घटनाओं से युक्त है इसीलिए वह पाठक के लिए दृश्य व चित्र बन जाता है ।[९०] तुलसीदास जी मध्यकाल की वर्णव्यवस्था से अत्यधिक

खिन्न थे ।

बरनधरम न हि आश्रम चारी[91]

या फिर

सोचिअ विप्र जो वेदविहीना, तजि निज धरम विषय लस लीना
सोचिअ नृपति जो नीतिन जाना, जेहिन प्रजाप्रिय प्रान समाना
सोचिअ वयसु कृपन धनवानुजोन अतिथि सिवभगति सुजानु
सोचिअ क्षुद्र विप्रअवमानी, मुखर मानी प्रिय व्यान गुमानी
सोचिअ गृही जो मोहबस्त करई करम. पथ त्याग
सोचिअ जाति प्रपंचरत विगत विवेक विराग[92]

यहां इन पंक्तियों की रचना के बाद तुलसी दासजी संस्कृति के उत्थान के लिए सभी वर्गों के उनकी कार्यक्षमता के अनुसार निर्धारित किये गये प्राचीन वर्गों का ही पारम्परिक स्वरूप प्रस्तुत करते हैं । तुलसी की यह बात और है कि भक्ति का सहचर्य पाते ही सब वर्णों का महत्व गौण स्वरूप धारण कर लेता है । स्वयं भगवान राम ने निषाद एवं आदिवासियों के समाज, वानर, रींछ आदि सभी में भक्ति की प्रबल भावना देखी तो उन्हें गले लगाया है । शबरी के जुठे बैर भी खाये हैं । उन्होंने ही राम से कहलाया है[93]

भिगतिहीन विरंची केन होई
सब जीवहु सबप्रिय मोहि सोई ॥
भगतिवंत अति नी चउ प्रानी
मोहि प्रानप्रिय असिमम बानी ॥[94]

तुलसीदासजी भक्ति के आगे संस्कारों व संस्कारिता दोनों ही आवश्यक नहीं है ऐसा मानते हैं । उनके अनुसार राम भक्ति सर्वश्रेष्ठ है । तुलसी दास भक्ति के समर्थक थे परन्तु झूटे आडम्बरों से उन्हें नफरत थी -

पंडित सोई सोगाल बजावा, या फिर
मित्थ्या रंभदंभ रत जोईता कहुसंत
कहई सब कोई -

यदि ब्राह्मण या संत भई अपने कर्मों को भूल गया है तो वह आदर का पात्र नही होना चाहिए -

निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी
कलियुग सोई ग्यानी सों बिरागी
जोक नख अरूजटा बिसाला
सोई तापस प्रसिद्ध कलिकाला[95]

उन्होंने ब्राह्मणों को भी फटकार सुना दी है जिनका कम वेदपाठ हैवे ही ब्राह्मण यदि ऐसे हो तो संस्कृति की धरोहरों का क्या होगा-

बरन धर्म नहि आश्रम चारी
श्रुति विरोध रत सब नरनारी[96]
विप्र निरूछर लोलुपकामी
निराचार सढ वृषली स्वामी[97]
द्विज श्रुतिवेचक भूपप्रजासन
कोउनहि मान निगम अनुशासन[98]

तुलसी के प्रतिकात्मक ब्राह्मण का पवित्र आचरण एवं पवित्र मानवीय व्यवहार पूर्ण होना आवश्यक है ।

यहां तुलसीने संस्कृति की उदारता का स्वरूप प्रदर्शित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि संकुचित जातियता या वर्णव्यवस्था का रामराज्य मे कोई स्थान नहीं है । तुलसी दास ने अपने साहित्य मे सचेत रहकर साहित्यिक चेतना को स्फुरित किया है । उनके साहित्य को हम उस काल मे चल रहे वैष्णव भक्ति आन्दोलन की परिणिती कह सकते हैं इस भूमिका पर तुलसी का साहित्य वैष्णव संस्कृति का प्रतिनिधि साहित्य बन जाता है ।[99] तुलसीदास ने मध्यकाल मे रामराज्य

की कल्पना की है व उसे सर्वश्रेष्ठ बतलाया है क्योंकि उसमें -

नहि दरिद्र कोउ दुखीन दीना
नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना[100]
दैहिक दैविक भौतिक तापा,
रामराजनहिं काहुहि व्यापा
सबनर करहिं परस्पर प्रीतो
चलहि स्वधर्म निरतश्रुति नीती
चारिउ चरन धर्मजग माही
परि रहा सपनेहु अघ नाही
राम भगति रतनर अरूनारी
सकल परमगति के अधिकारी ॥[101]

सभी लोग हर तरह से सुखी व सम्पन्न थे तुलसी ने जिस मध्यकाल की भयावह स्थिति को प्रत्यक्ष देखा था उसकी तुलना में रामराज्य से अधिक श्रेष्ठ कुछ भी नही हो सकता था । इसी लिए तुलसी दास न या अन्य लोगों जिन्होंने भी उस काल की साहित्यिक चेतना मे अपनी अभिरूचि दिखाई है या अपना अतुलनीय योगदान दिया है उन सभी ने उस काल की राजनीतिक सामाजिक साहित्यिक व सांस्कृतिक दुर्दशा को देखा तथा उनमे से भारतवर्ष की संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए प्रयत्न किये और उसके लिए उन्हें एकमात्र प्रयास रामराज्य की स्थापना दिखाई दिया । पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसकाल की परिस्थितियों को इन शब्दों में स्पष्ट किया है ।

जिस युग में तुलसी का जन्म हुआ था उस काल में समाज के आगे कोई ऊंचा आदर्श नहीं था । समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में उसी तरह से मग्न थे जिस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व सूरदास ने देखा था निचले स्तर के पुरूष व स्त्री दरिद्र अशिक्षित और रोग ग्रस्त थे । वैरागी हो जाना मामूली बात थी जिसके घर की सम्पत्ति नष्ट हो गई, संसार में कोई आकर्षण नही रहा या स्त्री मर गई तो तो वह चट से सन्यासी हो गया । सारा देश नाना प्रकार

के साम्प्रदायिक साधुओं से भर गया था । अलख की आवाज गर्म थी हालाकि ये अलख की आवाज उठानेवाले कुछ भी नहीं लख सकते थे ।[102]

नारि मुई घर सम्पति नासी, मुंड़ मुड़ाय भए सन्यासी[103]

उस काल में सभी लोग अपने कर्मों के विरूद्ध आचरण तो कर ही रहे थे परन्तु यह भी सत्य है कि ''नीच समझी जानेवाली जातियों में कई पहुँचे हुए महात्मा हो गये थे जिनमें आत्मविश्वास का संचार हो गया था पर जैसा कि साधारण हुआ करता है शिक्षा और संस्कृति के अभाव में यही आत्मविश्वास दुर्वह गर्व का रूप धारण कर गया था । आध्यात्मिक साधना से दूर पड़े हुए ये गर्व मूढ पण्डितों और ब्राह्मणों की बराबरी का दावा करते थे परम्परा से सुविधा भोग करने की आदि ऊंची जातियों इससे चिढ़ा करती थी । समाज मे धन की मर्यादा बढ रही थी । दरिद्रता हीनता का लक्षण समझी जाती थी ।[104]

ऐसे में मध्यकाल के संतो ने तुलसी कबीरे, दादु, मीराबाई, सूर जायसी, नामदेव, विष्णु स्वामी, निम्बार्क स्वामी, रामानन्द मध्वाचार्य चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल मे एवं रामानन्द व वल्लभाचार्य जीने ब्रजमण्डल में सरसकृष्ण भक्ति का प्रचार करते हुए साहित्य चेतना का प्रचार व प्रसार किया । भक्तिकाल की समस्त काव्य चेतना के मूल में भारत वर्ष की अविच्छिन सांस्कृतिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावधारा थी । जिसमें सगुण एवं निर्गुण भक्ति प्रदान साहित्य की रचना हुई, पाखण्डों व बाह्य आडम्बरों का खुलकर विरोध हुआ, संस्कारों कीं पवित्रता को सर्वोपरि माना गया। जांतिपात आदि का महत्व सुसंस्कारिता के आगे गौण माना गया । हर संत कवि ने अपने ढंग से साहित्यिक चेतना के प्रसार का बीड़ा उठाया तुच्छ समझी जानेवाली जातियों मे बड़े-बड़े महान संत तुए उन्होने यह सिद्ध किया कि किसी भी कर्म का स्थान ईश्वर की नजर में तुच्छ नही है ।[105] उस जगह चाहे निषाद हो या शबरी हो सभी का स्थान भगवान के हृदय में एक सा है । प्रभु श्री राम भक्ति को महत्व प्रदान करते और शबरी के

जूठे बैर खाते हैं व निषाद को भरत की तरह से गले लगाते है। यही रामराज्य में दिखाया है ।

तुलसीदास ने अपने काल मे जो कुछ गलत संस्कार व सामाजिक राजनीतिक स्थिति देखी थी उसको उन्होंने राम काव्य के प्रणयन द्वारा सुधारना चाहा रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समय में यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत बड़े कौशल से किया है । राजनीतिक इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से ऊबकर तुलसी दासजी ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है ।[107] अतः यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में साहित्यिक चेतना क्षणभंगुर नही थी वह स्थायी थी । उसको स्थापित करने मे सभी का सहयोग था । उस काल के सभी कवियों का प्रमुख ध्येय सोई हुई जनता को अपनी सुशुप्ता अवस्था से निकालकर भगवान के गुणगान की ओर लगाना था । युद्ध और संघर्ष का वातावरण हल्का हो चला था ।[108] धीरे-धीरे सभी कलाएँ विकसित होने लगी थी ऐसे में साहित्य का विकास नही यह कैसे संभव हो सकता है अतः इस काल मे साहित्य के माध्यम में ईश्वर पूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर जिनके कारण धर्म मे भेदभाव फैला हुआ था। वे शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे।[109]

कुछ संतो ने सगुण व निर्गुण दोनों स्वरूपों में ईश्वर भक्ति करते हुए साहित्यिक चेतना का प्रचार किया इनकी भी पुनः दो दो धाराएँ हुई - .

निर्गुण-ज्ञानाश्रयी (२) प्रेमाश्रयी

सगुण - रामकाव्य, कृष्णकाव्य

इन सभी का उद्देश्य साहित्यिक व सांस्कृतिक चेतना फैलाना ही था ।

ज्ञानाश्रयी कवियों मे निर्गुण मे ईश्वर की एकता पर बल देते

हुए बहुदेवोपासना मूर्तिपूजा रोजा नमाज आदि बाह्योपचार का डटकर विरोध किया और हिन्दु मुस्लिम जनता के आपसी वैमनस्य को कम करने के लिए साहित्य सृजन किया इसमें कबीर दादू पीपा मलूक दादू आदि इस प्रकार के काव्यों की रचनाकार थे । प्रेमाश्रयी निर्गुण धारा के कवियों में जो कि सूफी मुसलमान कवि कहे जाते हैं । मंझन मलिक मोहम्मद जायसी कुतु बन आदि ने भी हिन्दु समाज से प्रचलित प्रेम कहानियाँ के माध्यम से उनमे सूफी धर्म के सिद्धान्तों का समावेश करके प्रेमकाव्यो की रचना करते हुए एक नवीन साहित्यिक विधा का प्रणयन किया व लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम का निरूपण किया गया. है । ज्ञानाश्रयी व प्रेमाश्रयी दोनो ही प्रकार के साहित्यकारों ने हिन्दु मुसलमान के बीच की खाई को पाटना चाहा था । कुछ ज्ञानाश्रयी कवि बाह्य आडम्बरों पर अपने साहित्य मे गहरा प्रहार करते थे तो सूफी कवि प्रेम की पीर का माध्यम बनाकर अपने ग्रन्थों की रचना करते थे जिससे कि हिन्दु मुस्लिम एकता समन्वित होती रहे।

दूसरी ओर सगुण भक्ति धारा के कवियों का मुख्य उद्देश्य अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध कर रहे थे कि निर्गुण ब्रह्म ही उनके उद्धार के लिए सगुण स्वरूप लेकर आ गये हैं और इस प्रकार राम और कृष्ण के अवतारों का चित्रण करते हुए अपने काव्यों में उस अलौकिक ईश्वर की सत्ता का महत्व प्रतिपादित किया। चारों ओर से निराश जनता को आश्वस्त किया कि उनका दुःख का समय अब बीत चुका है उनके ईश्वर अब स्वयं ही रामायण के माध्यम से उनके दुःखों का अन्त करनेवाले हैं । रावणराज का अतः स्वाभाविक है व रामराज्य की स्थापना भी होने ही वाली है । कृष्ण चरित से आततायी कंस व अन्य दुष्टों का संहार करवाया गया जिसका पठन करने से जनता में एक नवीन आत्मशक्ति की प्राप्ति हुई उसमें एक नवीन चेतना का संचार हुआ । इन कवियों के माध्यम से जनता ने अपने आप को हताशा व निराशा से उपर उठाकर नवीन आध्यात्मिक मार्ग पर खड़ा पाया जहां उनकी भक्ति व श्रद्धा को एक आश्रय प्राप्त हो चुका था उनकी खोई हुई शक्ति उन्हे पुनः प्राप्त हो गई ।

रामचरित मानस का सांस्कृतिक परिवेश तथा स्थापित मूल्य + धर्म + समाज + संस्कृति, जन्म, चूड़ाकर्म, बाललीला, यज्ञोपवित, गुरूदीक्षा, शिक्षा, गुरू शिष्य सम्बन्ध, गुरुकुल व्यवस्था, वैवाहिक व्यवस्था, समाज की रीतियाँ नैतिक मूल्य सांस्कृतिक चेतना, मरणपर्व ।

सम्बन्ध - भाई-भाई, माता व पुत्र, पति पत्नी, पिता-पुत्र, राजा-प्रजा ।

गोस्वामी तुलसी दास भारत वर्ष के महानतम कवियों मे से अग्रणी माने जाते हैं उनका नाम लेते ही सायास ही रामकथा की छबी मन मस्तिष्क पर अपनी पहचान बनाने लगती है यह ध्रुव सत्य है कि तुलसी बिना रामकथा व रामकथा बिना तुलसी अधूरे लगते हैं तुलसी दासजी की रचनाओं में सर्व प्रथम स्नान रामचरित मानस का है वह भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है सिर्फ भारत वर्ष मे ही नही वह विदेशों मे भी काफी लोकप्रिय है । जिस काल में राम चरित मानस की रचना की गई वह सांस्कृतिक दृष्टि से विपरीत काल कहा जा सकता है हर ओर असमानता का वातावरण था कही भी शान्ती नही थी लोग अपने आप को असहाय समझ चुके थे । उनका ईश्वर पर से विश्वास उठ चुका ता । जनता दोहरे जाल में फंस चुकी थी एक और शासक वर्ग था तो दूसरी ओर पाखण्डी धर्म के ठेकेदारे थे । दोनों ही अपने निज स्वार्थों की पूर्ति के सिवा जनमानस के दुःखों या सुखों से कुछ भी लेना देना नही था पिछले अध्यायों में हम उस काल की राजनीतिक परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए मध्य काल की दयनीय परिस्थिति का जायजा ले चुके हैं अतः उन सभी को दोहराना ठीक न होगा परन्तु इस बात से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि उस काल में जो कुछ भी हो रहा था वह सुखद नही था । ''तुलसी के अपने युग में भारतीय तथा इस्लामी अर्थात् हिन्दु सामन्ती व्यवस्था मे कोई दोष ही नही थे परंतु उसे मुसलमान

आक्रान्ताओं द्वारा पराभूत होना पड़ा था और इस पराजय की कसक हिन्दु मानस मे बनी हुई थी फलतः हिन्दु सामन्ती संस्कृति हिन्दू चेतना मे एक नई आभा से मण्डित हो गई और उसने आदर्श रूप प्राप्त कर लिया । मुसलमानों के अत्याचार रक्तपात शोषण तथा दमन की अभिव्यक्ति उस आसुरी संस्कृति के रूप में हुई जिसे रावण राज्य के रूप में मूर्तिमान किया गया ।[1] जब चारों ओर उत्पीड़न अराजकता, लाचारी, अत्याचार, निजस्वार्थ वहशीपन दिखाई देता हो ऐसे में जनमानस को सम्बल देना अत्यन्त कठिन कार्य होता है और ऐसे कठिन कार्य को सम्पन्न करने का बीड़ा तुलसीदास जीने उठाया उन्होने रावणराज्य के समक्ष रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत करके तुलसीदास जीने हिन्दु जनता में पथप्रदर्शक बने पौराणिक संस्कृति से भक्ति को व साधु संस्कृति से सन्तत्व को मिलाकर तुलसी ने लोक संस्कृति का एक नवीन पुट तैयार किया और उसके द्वारा सामान्य जनता को नयी आसथा नये विश्वास तथा नये संस्कार प्रदान किये ।[2] उन्होने धर्म का सर्व सुलभ स्वरूप प्रस्तुत करते हुए भक्ति की महत्ता व नाम के महत्व को प्रतिपादित किया, तुलसीदास जीने णध्ययुगीन नैराश्य को आशा मे परिवर्तित कर दिया । ईरानी भोगवादी संस्कृति के समक्ष प्राचीन भारतीय संस्कृति जिसमें त्याग व तपस्या व भक्ति को महत्व प्रदान किया जाता था को लाकर खड़ा कर दिया । यह सत्य है कि केवल मुसलमानी शासन के उत्पीड़न और अत्याचार ही तुलसी के काव्य की प्रेरणा नही बनें हिन्दु जाति के सांस्कृतिक पतन की गहरी अनुभूति भी उनमे जागी है इसीलिए उन्होने यथार्थ के धरातल उतरकर कलियुग (अन्धकार युग) के रूप में अपने युग का चित्र खींचा है राम चरित मानस मे तुलसी दास ने अपने सांस्कृतिक मनोभावों [3] को प्रस्तुत किया है [4] उनका साहित्य एक साथ युगजीवन दोनों से एक साथ जुड़ा हुआ रहता है । वह एक ओर राम के अवतार की कथा है तो दूसरी ओर वह मानवीय चेतना के आध्यात्मिक पक्षों को स्पर्श करता है तो उसके साथ कलियुग ओर रामराज्य की कल्पनाओं में म्लेच्छोव बर्बरों के रूप में लगभग तीन सो वर्षो के मुसलमानी शासन का भी समीक्षात्मक पूर्वभाष हमे दे देता है[5] मध्यकाल की पृष्ठभूमि

में हमें एक और प्राचीन संस्कृति का लोप होता हुआ दिखाई देता है तो दूसरी ओर तुलसी दास जी के व संत कवियों के माध्यम से उसी संस्कृति का पुनःनिर्माण होता दिखाई देता है । भारतीय संस्कृति अक्षुण थी व रहेगी उसमें नवीनता का समावेश होता रहता है पर उसका वैदिक स्वरूप स्थायी होता है । रामचरित मानस का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि तुलसी दासजीने रामचरितम मानस के माध्यम से साहित्य के सहयोग से प्राचीन भारतीय संस्कृति को नवीन स्वरूप प्रदान करते हुए जन मानसके समक्ष आदर्शों को प्रस्तुत किया है यह सत्य है कि तुलसी की राम चरित मानस भारतीय संस्कृति भारतीय धर्म भारतीय चिन्तन और भारतीय आचार का निचोड़ है। उसमें उन्होंने बौद्ध संस्कृति की शील, करूणा, मैत्री, जैन संस्कृति के तप और अहिंसा तथा भागवत संस्कृति की भक्ति का भी विलक्षण योग मिलने के कारण एक नये आचार धर्म से मण्डित हो जाती है ।[6] भारतीय संस्कृति के साहित्य को हम वर्तमान युग मे भी ''वाल्मीकि व्यास कालिदास और तुलसी की वजह से फलता फूलता पाते हैं - वाल्मीकि ने अपनी वाल्मीकि रामायण मे राजनैतिक विचारधारा का अत्यधिक विकसित स्वरूप प्रस्तुत किया है । निषाद और आर्य संस्कृति दोनों का पारस्परिक सहयोगी स्वर और भारत वर्ष के ग्राहस्थ्य और चारित्र्य की अभिव्यक्ति वाल्मीकि रामायण में हुई है, उसे भारतीय संस्कृति का प्रभात काव्य है उसमे जटिल रेखाएँ नहीं है ।[7] वह आधार ग्रन्थ है जिसके बाद कितनी ही रामायणों की रचना हुई ।

उनके अलावा व्यास का महाभारत भारतीय समाज और संस्कृति के अधिक जटिल और अधिक सैश्लिष्ट तानेबाने से निर्मित है वहां पर मानवीय दुर्बलता को स्पष्ट किया गया है तो दूसरी ओर भीष्म और श्रीकृष्ण की महानता को भी दर्शाया गया है । कालिदास को भारतीय संस्कृति की तारूण्य तथा हास-विलासमयी सामन्ती संस्कृति के कवि थे उनमे राष्ट्रीय यौवन का सूर्य तप रहा है कल्पना, फल अनुभूति एवं वाल्विलास मे वे अपने प्राचीन कवियों से अधिक प्रतिभाशाली दिखाई देते हैं परन्तु वे अपनी प्राचीन धरोहर का उपयोग करना नही

भूलते हैं इन सबके बाद संस्कृति के महान स्वरूप का निरुपण करने वाले कवि के रूप में तुलसी दास जी का स्थान है । तुलसीदास जी को हम भारतीय संस्कृति की प्रौढता का कवि सकते हैं उन्होंने भारतीय अध्यात्म का एक समाचीन संस्करण तैयार किया है और हासोमुखी चेतना से देश को उबारने के लिए चिरप्राथित रामकथा का अवलम्बन लिया । तुलसी दासजी ने इसीलिए अपने राम चरित मानस में वैष्णवों के अवतारवाद व वैदान्तियों के ब्रह्मवाद को समन्वित करके निर्गुण और सगुण के भेद का निराकरण किया है । एक सगुण राम की नरलीला की रचना करके उनमें मानवता के श्रेष्ठतम आदर्शों को चरितार्थ कराया है ।[८] जहां पर उन्होंने भोगवादी इरानी संस्कृति को रावण की आसुरी संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया है दूसरी ओर उसका सुधरा हुआ प्राचीन स्वरूप विभिषण के चरित्र में दर्शाया है।

तुलसी दास के रामचरित मानस में उन दोनों भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहरों की विशेषताओं का सम्मलित स्वरूप प्रस्तुत किया है । उसमें एक साथ वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्‌भागवत तथा अन्य महाकाव्यों की भूमिका का निर्वाह हुआ है वह हमारा नया सांस्कृतिक प्रदेय है वह काव्य में भिन्न उससे कुछ अलग हटकर सांस्कृतिक परिवेश को स्पष्ट करने वाली चीज है जिसे हम निश्चित ही सांस्कृतिक कार्य की संज्ञा दे सकते हैं ।[९]

यह सत्य है कि तुलसी दास मध्ययुग के एक बड़े सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलन की देन है । उन्होंने इस आन्दोलन के सर्वोच्च शिखर पर अपना आसन जमा रखा है और उस काल से आज तक कोई भी इतनी अधिक प्रशंसनीय रचना नहीं कर सका है जितनी की रामचरित मानस है ।

इस तरह से हम एक सुसंस्कृति का आदर्श रामचरित मानस में पाते हैं जब उसकी रचना की गई थी तब समाज टूट चुका था, नैतिक मूल्यों ने अपना महत्व खो दिया था । वर्णाश्रम व्यवस्था नष्ट होने लगी थी, एकाकी परिवारों की संख्या बढ चुकी थी । ब्राह्मणं

एवं धार्मिकता व साधु संतों का महत्व घट चुका था । ऊंचनीचं की भावना लोगों के हृदयों में स्थान बना चुकी थी, नारी पर अनेकों बन्धन कसे जा रहे थे और वह उनसे मुक्त होकर स्वच्छन्द आचरण करना चाहती थी जो कि वैदिक काल की संस्कृति से विरोधी स्वरूप वाला था । चूंकि उस काल में इरानी भोगवादी संस्कृति का बोलबाला था नारी ने अपने मानदण्डों को बदल दिया था उसका स्थान गिर चुका था । बहुपत्नी का बुरा नही माना जाता था । तुलसी दासजी ने इन सभी सामाजिक बुराइयों को देखा व महसूस किया था यदि दशरथजी एक पत्नीव्रती होते ते राम के वनवास का प्रश्न ही नही उठता । रावण सीता का हरण क्यों करता - यदि नारी स्वच्छन्द आचरण नही कर सकती तो शूर्पनखा राम व लक्ष्मण के पास क्यों जाती । व्रर्णाश्रम को यदि महत्व प्रदान किया जाता तो आपसी वैमनस्य ही क्यों होता इन सभी परिस्थितियों का समाधान रामचरित मानस में प्राप्त होता है । यदि राजा व प्रजा मे स्नेह होता तो गरीब व निरीह जनता की दुर्दशा लंका में नहीं दिखाई देती -

तुलसी ने स्पष्ट लिखा है -

बरन धरम नही आश्रम चारी,
श्रुति विरोध अत अवनर नारी

या फिर -

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन
को उनही मान निगम अनुशासन

या फिर -

साई अज्ञान जो परधनहारी
जोकर दम्भ सो बड़आचारी
जो कह झूटमसवरी जाना
कलियुग सोई गुणवंत बखाना
निराचार जो श्रुतिमनात्यागी
कलियुग सोई रयानी बिरागी -[10]

सबनर काम लोभ रत क्रोधी,
देवि विप्र श्रुति संत विरोधी
गुनमंदिर सुथरपति त्यागी
भजहिं नारि पर पुरूष अभागी
सौभागिनी विभूषन हीना
विधवन्ह के सिगारनवीना
गुरूशिष बधिर अंधकालेखा
एक न सुनहि एक नहि देखा[11]

कहकर तत्कालीन समाज का ही चित्रण किया है ।

उंन्होंने धर्म की भी जो दुर्गति उस काल मे हो चुकी थी उसका भी वर्णन सटीक किया है । वे स्वयं वैष्णव व एक सच्चे हिन्दु थे उस काल में धर्म के नाम पर जो शोषण हो रहा था वह उनसे छुपा नही था । मुसलमान राजा एक हाथ मे तलवार व दूसरे मे कुरान लेकर धर्मपरिवर्तन करवा रहे थे । हिन्दुओं को मजबूर गौमांस खिलाया जाता था उनकी बहू-बेटियों से विवाह करके उनका धर्म परिवर्तन कराया जाता था । हिन्दुओं पर जजिया कर लगा हुआ था जिसके अन्तर्गत हिन्दु धर्म माननेवालों को एक प्रकार का कर देना होता था जिस के बोझ के नीचे वे दबने लगे थे मजबूरन उन्हे अपना धर्मपरिवर्तन करना पडता था ।

''मुसलमान विजेता आते ही अपने धर्म के प्रचार मे लग गये थे उनके एक हाथ में तलवार थी व दूसरे मे कुरान की पुस्तक, अक्बर ने हिन्दु राजाओं के साथ सहिष्णुता का परिचय देकर उनकी बहू-बेटियों से विवाह करके एक तरह से तो हिंदुओं के धार्मिक जीवन पर हस्तक्षेप ही था ।[12] हिन्दु धर्म की स्थिति शोचनीय हो चुकी थी । आपसी वैमनस्य व अनेकों मतों के कारण धर्म की नीवही हिलने लग गई थी । उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक समस्त देश मे विभिन्न धर्म साधनाओं का प्रचार था और उन सभी से पारस्परिक संघर्ष हो रहा था । शैव, वैष्णव, शाक्त वामपंथी, हठयोगी, आदि का झगड़ा चलता रहता था । धर्म के सिद्धान्तों को भूलकर

के लोग अन्धविश्वासों मे फंस गये थे । पिछले अध्याय में जगन्नाथ जी के मंदिर वाली घटना इसी बात की द्योतक है मंदिर व मठपापाचार और दुराचार के केन्द्र बन गये थे ।

हठ योगी नाथपंथी अघोरी आदि साधु अनेकों प्रकार से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए तरह तरह के चमत्कारों का प्रदर्शन करके अपनी महानता सिद्ध कर रहे थे ।

जाके नख अख जटा बिसाला, सोई तपास प्रसिद्ध कलिकाला ।[13]
असुभ वेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जेखाहिं ।
तेइ जोगी तेई सिद्धनर, पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥
जेहि विधि होई धर्मनिर्मूला, सो सब करहि वेद प्रतिकूला
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि, नगर गाँउ पुर आग लगावहिं[14]
कहकर अधर्मो लागो के त्रास को भी दर्शाया है । जो उस काल में भी समसामयिक था । क्योंकि उस काल में मंदिर तोडे जा रहे थे उनके जगह पर मस्जिद बना रहे थे । हिन्दु धर्म को नेस्तनाबूद करने का प्रयत्न कर रहे थे । ऐसे में तुलसीदास जीने रामनाम का महत्व प्रतिपादित करते हुए श्रीराम के आदर्श चरित्र का चित्रण किया है । क्योंकि उस काल में लोगों का उद्देश्य केवल निज स्वार्थों की पूर्ति ही रह गया था - वेद धर्म दूरि गये भूमि चोर भूप भये
व कलि मल ग्रसे धर्म सब,
लुप्त भये सदग्रन्थ
दभिन्ह निज अति कल्पि करि
प्रकट किये बाहु पंथ[15]
या फिर -
ब्रह्मज्ञान बिनु नारिनर
करहि न दूसरि बात
कोठी लागी लोभ बरु
करहिं विप्र गुरन धात[16]

तुलसीदास जीने इस बात को और स्पष्ट किया है कि सांसारिक

सुख सम्पत्ति धर्मशील के पीछे स्वयं दौड़ती है -

जिमि सरिता सागर पह जाही
जघपिताहि कामना नाहीं
तिमि सुख सम्पत्ति बिनहि बोलाए
धरमसील पहुँ चाहिं सुभाए[17]

यहां तक की दाम्पत्य प्रेमपूर्ववत पवित्र नही रह गया था नरनारी केवल भोग को ही सर्वस्व मान बैठे थे । गुरूशिष्य के सम्बन्ध भी पवित्रता खो बेठे थे । तीर्थों की स्थिति भी दयनीय थी । वे भ्रष्टाचार के केन्द्रों के रूप में परिवर्तित हो गये थे । नर अरूना कि अधर्मरत, सफल निगम प्रकूल व

सूर सदनीने तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाल
मनहूँ मवासें मारि कलि राजत सहित समाज
कलिकाल बिहार किए मनुजा नहि मानतवचौ अनुजातनुजा
नहितोष विचारन सीतलता, सब जाति कुजाति भए मगता

धर्म की वेदी पर अपना सर्वस्व उत्सर्ग करनेवाले लोग नही थे ऐसा न था उन लोगों में, (1) धर्मधुरीन भानुकुल भानुराम (2) धरम धुरन्धर भरत महान धरमशील दशरथ के अलावा सिवि दधीचे, हरिचन्द नरेसा सहे धरम हित कोटि कलेसा ।[18]

रामचरित मानस के परिवेश के सन्दर्भ में विचार करते हुए पिछले अध्यायों में दिया जा चुका है पुनरावृत्ति के स्थान पर यही कहा जा सकता है कि रामचरित मानस के पठन मात्र से लोगों को अपने सांस्कृतिक गौरव का पता चलता है । उसमें संस्कृति का जो स्वरूप उभरता है वह अक़बरकालीन स्वर्णयुग को नही प्रदर्शित करता है । उस यथार्थ को स्पष्ट करता है जो-उस काल ही क्या आज भी प्रासंगिक कहा जा सकता है ।[19] तुलसीदास ने अपनी कुछ सीमाएँ बना ली थी और उनका अपने युग की सामन्ती संस्कृति से विरोध था इसे इरानी भोगवादी संस्कृति भी कहा जा सकता है ।[20] तुलसीदास ने

एक स्वप्न देखा था उसमें उन्होंने हिन्दु संस्कृति को पुनःजीवित करते हुए अपने काल के लेखा जोखा देते हुए युग संस्कृति का नव निर्माण की भरपूर चेतना भी दिखाई देती है और कवि उस चेतना को लोक रंजित स्वरूप न देकर आध्यात्मिक स्वरूप देना चाहता है । तुलसीदास जी के रामचरित मानस में मुगलशासन की भौतिक सम्पन्नता और लौकिक ऐश्वर्य के विपरीत तुलसी का संस्कृतिक उत्कृष्टतम नैतिक और आध्यात्मिक जीवन मूल्यों का निर्माण करता है और वह विरोध ही कलियुग को हमारे लिए आकर्षण का केन्द्र बना देती है । तुलसीदास ने अपने युग की तुलना कलियुग से की व उसके स्थान पर रामराज्य की कल्पना की व उसे आदर्श स्वरूप प्रदान किया । तुलसी ने रामचरित मानस को रामत्व और रावणत्व के संघर्ष के रूप में पल्लवित किया है और अपने आराध्य राम के अनुग्रह उनकी करूणा और धर्मशीलता की बराबर दुहाई दी है ।

तुलसीदास जीने अपने रामचरित मानस में प्राचीन कालीन संस्कारों का भी समयोचित उल्लेख किया है हमे सम्पूर्ण शोडष संस्कारों के स्थान पर केवल नव संस्कारों का ही उल्लेख मिलता है जिनमें से कुछ का उल्लेख हम यह करगे मानव के व्यक्तिगत विकास में समाज तथा धर्म संस्कृति का विशेष योगदान रहता है । प्रत्येक मनुष्य का जीवन तथा व्यवहार उसके सामाजिक परिवेश एवं उनसे प्राप्त नैतिक, भावात्मक तथा परम्परागत संस्कारों पर आधारित रहता है । वह आदानप्रदान एक पक्षीय नही होता है ।[21] संस्कारों से मनुष्य अपने आपको दूसरों से भिन्न समझता व समझाता है । प्राचीन भारतीय जीवन को दृष्टिकोण एवं उद्देश्य यह था कि जब तक मनुष्य जीवित रहे वह सर्वांगीण उन्नति करे और मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करे । जीवन के सर्वांगीण (शरीर व मन) के पूर्ण विकास की व्यवस्था की व्यवस्था की गई[22] जिससे मनुष्य अपना व अपने परिवार व समाज को अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति से जुड़ा हुआ रख सके । भारतीय समाज में संस्कार की विशेष प्रतिष्ठा है । जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का विधान है इन संस्कारों से ही मानव परिष्कृत होता हुआ आगे

की ओर बढता है समृद्ध और सुखी जीवन के लिए संस्कार आधारशिला है ।[23]

प्रत्येक समाज अपने मूल्यों और धारणाओं को सजीव और सुरक्षित रखने के लिए उनके प्रति निष्ठा और विश्वास उत्पन्न करता है इसलिए सामाजिक तथा धार्मिक प्रेरमा और अनुशासन की आवश्यकता होती है । संस्कार इस प्रकार की प्रेरणा और अनुशासन के सफल माध्यम है - राजबली पान्डे । संस्कार का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके किये जाने पर व्यक्ति या पदार्थ मे योगता का आधान करनेवाली क्रियाओं को संस्कार कहते हैं ।[24] संस्कारों से युक्त व्यक्ति का जीवन जहां समाज में प्रचलित मान्यताओं विश्वासों, त्योहारों एवं जीवन दर्शन से नियंत्रित होता है वहां साथ ही प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत व्यवहारों एवं सहानुभूति से उन परम्परागत संस्कारों को चलित परिवर्तित करता हुआ समाज के नये तथा उन्नत आदर्शों को प्रतिष्ठापित करात है ।[25] तुलसी के राम चरित मानस से प्रथम हम रामजन्म के संस्कार का वर्ण' देखेंगे - तुलसी दासजी ने विशेषतः इस बात का उल्लेख किया है कि राजा दशरथ को पुत्र न होने की वजह से काफी दुःख था और तीन तीन रानियों के होते हुए भी उन्हे निःसंतान होने की पीड़ा का वर्णन भी रामचरित मानस में हुआ है -

एकबार भूपति मनमाही, भैगलानि मोरे सुतनाहीं ।।
गुरूगृह गये तरुत महिपाला, चरन लगि करि विनयविसाला ।।
धरहु धीर होइहहि सुत चारी, त्रिभुवन बिदित भगतभयहारी ।।
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा, पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ।[26]

इस यज्ञ के बाद ही दशरथ जी को पुत्र की प्राप्ति होती है, जब कोई भी चीज बहुत प्रतीक्षा के बाद प्राप्त होती तो उसको अमोल या बहुमूल्यवान कहा जाता है इस प्रकार यहां भी रामचन्द्रजी बहुत प्रतीक्षा के बाद ये रघुकुल मे आये थे अतः उनके जन्म के बाद होनेवाले उत्सवों का वर्णन करना आवश्यक है ।

जोग लगन गृह बार तिथि, सकल भए अनुकूल
चर अरू अचर हर्षजुत, रामजनम सुखमूल
नामी तिथि मधुमास पुनीता, सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता
मध्य दिवस अति सीत नधामा पावनकाल लोकविश्रामा
सीतल भन्द सुरभि बह बाऊ, हरपित सुरसंतन मन चाउ
बनकुसमित गिरिगन मनि आरा, स्त्रवहि सकल सकिता अमृतधारा[27]
सों अवसर बिरंचि जब जाना, चले सकल सुर साजि विमाना
गगन बिमल संकुल सुर जूथा, गावहि गुन गन्धर्व बरूथा
बरषहि सुमन सुअंजालिसाजी ग्रह गहि गगन दुंदुभी बाजी
अरहुनि करीहे नाग मुनि देवा,. बहुबिधि लावहि निज सेवा
सूर समूह बिनती करि पहुँचे निज-निज धाम
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोकविश्राम[28]
कनक कलस मंगल करि थारा, गावत पैठहि भूप दुआरे

इस प्रकार रामचरित मानस में जन्म से समय का वर्णन किया गया है जिसमें श्रीराम के ब्रह्म स्वरूप का परिचय आरम्भ मे ही दे दिया है ।

विप्र धेनु सर संतहित लीन्ह नुजअवतार
निज इच्छा निर्मिततनु, माया गुन गोपार[29]
दसरथ पुत्रजन्म सुनिकाना, मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना,[30]

उसके बाद वसिष्ठ जी ने पुत्र जन्म के बादके सारे कर्म करवायें-

नन्दी मुख सराधकरि जातकरम सब कीन्ह
हाटक धेनु बसन मनि नृप विप्रन्ह कहँ दीन्ह ।[31]

इस प्रकार रामचरि मानस में जन्म से पहले व जन्म के बाद समय व उस संस्कार का वर्णन है जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं।

गृह गृहबाज बघाव सु प्रगटे सुषमाकंद
हरषवंत सब जहत है नगरनारिनरवृंद[32]

वैक्य सुता सुमित्रा दोऊ सुन्दर सुत जनमन्न भै ओऊ,

कछुकदिवस बीते ऐहिभाँती जातन जानिअ दिनअरू राती-
नामकरण का अवसर जानी भूप बोलि पढए मुनि ग्यानी ।

इस प्रकार भगवान के नामकरण तक के सारे संस्कार-एक के बाद एक कर दिये जाते हैं । उसके बाद उनकी बाललीला के अनुरूप ही उनके नामो का चयन किया जाता है - जो सबको आनन्द देते थे ।

राम -

जो आनंद सिंधु सुखरासी, सीकरते त्रैलोक सुपासी
सो सुख धाम राम असनाम, अखिल लोभदायक विश्रामा[३३(i)]

भरत- विस्व भरन पोषनकर जोई, ताकर नाम भरत अस होई[(ii)]
शत्रुघ्न- जाके सुमिरन ते रिपुनासा नाम सत्रुहन बेद प्रकासा[(iii)]
लक्ष्मण- लच्छन धाम राम प्रिय, सकलजगत आधार ।।
गुरू वसिष्ठ तो हेराखा, लछिमन नाम उदार ।।[(iv)]

धरें नाम गुरू हृदय बिचारी बेदतत्व नृपतवसुत चारी ।
मुनि धनजन सरबस सिवप्राना, बालकेलि रखतेहिं सुख माना

बरिहि जेनिज हित पतिजाती, लछिमन राम चरन रीतेमानी
भरत सलुहन दूनउ भाई, प्रभु सेवक जस प्रीति बढाई[(v)]

माताओं के स्नेह का पार नही है वे उनकी बाललीलाओं पर न्योछावर होती रहती है, करोडों कामदेवों की सुन्दरता उनमे दिखाई देता है। राम व भरत नीलकर्ण है व लक्ष्मण व शत्रुघ्न गोरवर्ण है उनके लाल-लाल चरण पर नख ऐसे लगते हैं मानों मोती हो, नीलकंज बारिद गभीरा

अरनन चरन पंकज नख जोती कमल दलन्हि बैठे जनु मोती
काम कोटि छाबे स्याम सरीरा ।

अपने चरणों से जब ठुमक-ठुमक चलते थे तो उनकी पायल

के घुघरूओं के शब्द सारे लोगों को मोहित कर देते थे । उनके चरणों में ध्वजा वज्र अंकुश रेखाएँ शौभायमान थी उनके वक्षस्थल पर भृगुजी के चरण चिन्ह दिखाई पडते थे उन्होंने मणियों की माला पहनी हुई है ।

उनके कमर में करधनी उदर मे तीन रेखायें तथा नाभी की गम्भीरता को तो वे ही जान सकते हैं जिन्होंने उन्हे देखा है । बहुत से आकर्षणों से युक्त विशाल भुजाएँ हैं । शंख जैसा कंठ है अति सुन्दर ढोड़ी है, मुख पर अपार कामदेवों की शोभा है दो दो दान्त है लाल-लाल ओठ है, नाक व तिलक तो अवर्णनीय है । सुन्दर कान तथा समीपस्थ श्रेष्ठ कपोल है उनकी तोतली बातें हैं काले काले घुघराले बाल है, जिनको माता ने बहुत सुन्दर ढंग से सजा रखा है, पीले रंग का झबला पहना हुआ है । वे हाथों व घुटनों के बल चलना तुलसी दासजी को बहुत अच्छा लगता है ये सब कुछ वही समझ सकता है जिसने उन्हे कभी बालस्वरूप में स्वप्न मे भी देखा हुआ हो ।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे ।
नुपुर धुनि सुनि मुनिमन मोहे ।।
कटि किंकनी उदर त्रयरेखा, नाभि गंभीर जान जेहि देखा -
भुजबिसाल भूषन जुतभूरी, हिय हरि नख अति सोभा रूरी
उर मनिहार पदिक की सोभा विप्रचरन देखत मन लोभा,
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई, ानन अमित मदन छबि छाई ।
दुई दुई दसन अधर अरूनारें, नासा तिलक को बरनै पारे ।।
सुन्दर श्रवन सुचारू कपोला अजिप्रि मधुर तोतरे बोला
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे बहुप्रकार रचिमाल सँवारे
पीत झगुलिया तनु पहिराई, जानु पानि विचरनि मोहि भाई
रूप सकहि नहिं कहि श्रुनि सेवा, सो जानइ सपनेहु जेहि देखा-
सुख संदोह मोह पर ग्यान गिरा गोतीत
दंपति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत[34]

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के पालक पिता श्रीराम जी अवधवासियों को अतीव सुख देते हैं । बाललीला करते करते काफी समय बीत जाता है उसके बाद चूड़ा कर्म का समय आताहै । इस संस्कार के अवसर पर शिशु के बाल कटवाकर उसकी शिखा रखवाई जाती है। चूड़ा कर्म आज भी हिन्दुओं के यहां प्रचलित है वर्तमान समय में जडूला मुण्डल केशाच्छेदन कहकर यह संस्कार होता है मनु ने कहा है कि - शिखा पर पहनने वाले आभूषण को चूड़ामणि कहते हैं-

चूडा कर्म द्विजातिनां सर्वेषामेव धर्मेतः ।

आश्वालयन ने कहा है तृतीय वर्षेचोलम, अर्थात् प्रथम या तृतीय वर्ष मे चूड़ाकर्म होता है । इस संस्कार के अवसर पर गर्भ के बालों को नाई से कटवाकर सकोरे मे रखकर जंगल में गड़वा दिया जाता है व घर में मांगलित उत्सव मनाया जाता है ।[35] तुलसीदास जीने राम चरित मानस से इसका उल्लेख मात्र किया है । धर्मशास्त्र के अनुसार इस संस्कार का उल्लेख अथर्ववेद मे मिलता है ।[36]

चूड़ाकरन कीन्ह गुरू जाई, विप्रन्ह फनि दछिना बहुपाई
परम मनोहर चरित अपारा करत फिरत चारिउ सुकुमारा
मनक्रम बचन अगोचर जोई, दसरथ अजिर विचर प्रभु सोई
निगमनेति सिव अंत न पावा, ताहि धरै जननी दृढि धावा
धूसर धूरि भरे तनु आए, भूपतिविहसि गोद बैठाए
भोजन रत चपल चित, इत उत अवसरू पाइ
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ,
बाल चरित अति सरल सुहाए सारद सेष संभु श्रुति गाए ।
जिन्ह कर मन इन्ह सन जाहेराता, तेजन वंचित किये बिधाता ।[37]

बाललील के बाद यज्ञोपवीत नामक संस्कार किया जाता है । इसे उपनयन भी कहा जाता है - मनु ने वर्णों के अनुसार उपनयन संस्कार का विधान बताया है ।

सोलह वर्ष तक ब्राह्मण बाईस वर्ष तक क्षत्रिय और चौबीस

वर्ष तक वैश्य के उपनयन का अन्तिम समय कहा है । इस अवधि तक उपनयन न होने से उसे सावित्री पतित अर्थात् निन्दित माना जाता है । ब्राह्मण कृष्णमृगचर्म अन्यवर्ण वाले रेशमी या सनके वस्त्र धारण करते हैं मौजी व दण्ड का भी प्रतत्येक वर्ण के लिए पृथक से विधान है ।[38]

पारस्कर और आश्वलायन गृह्यसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण के बालक का उपनयन आठवें वर्ष में क्षत्रिय बालकथा ग्यारहवे और वैष्य के बालक का बारहवें वर्ष में करने का आदेश है । उपनयन के द्वारा बालक द्विज बनता है । एक बार तो वह माता के गर्भ से जन्म लेना और दूसरी बार गुरू के गर्भ में विद्या प्राप्त करके वह द्विज बनता था । ऐसा समझा जाता था कि उपनयन के द्वारा गुरू शिष्य को अपने गर्भ के अन्दर धारण करता है -

आचार्यः उपनयमानी ब्रह्मचारिणु वृणते अर्भमन्तः

अर्थात् गुरू का कर्तव्य है कि शिष्य को उस प्रकार धारण करे जैसे गर्भवती गर्भ को धारण करती है ।[39]

तुलसीदास जीने रामचरित मानस मे इस संस्कार का विस्तृत वर्णन न करके केवल यह लिखा है -

भए कुमार जबहि सब भ्राता, दीन्ह जनेउ गूरू पितुमाता-[40]

उपनयन संस्कार के द्वारा आचार्य बालक को शिष्य के रूप में स्वीकार करके गुरूकुल में प्रविष्ट करता है । आश्वलायन सूत्र मे उपनयन संस्कार की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन मिलता है -

सर्वप्रथम बालक के केशों का मुण्डन कराकर स्नान कराते हैं।[41] तदुपरान्त उसे नवीन उत्तरीय एवं अधोवस्त्र पहनाये जाते हैं । फिर वह मेखला और दण्डधारण करके उपनयन के लिए आचार्य के सम्मुख बैठता है हवन के अनन्तर आचार्य शिष्य को गायत्री मंत्र की शिक्षा

देता है और तदनन्तर तीन ऋणों का सूचक तीन सूत्रवाला यज्ञोपवीत देकर उसे ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कराकर ब्रह्मचारी बनाता है । इसके बाद आचार्य उस ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश देकर उपस्थित जनसमुदाय से भिक्षा माँगने का आदेश देता है मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम माता से फिर बहन या मौसी से भिक्षा माँगनी चाहिए । उपनयन के बाद ब्रह्मचारी आचार्य के ही कुल का एक सदस्य भी हो जाता है ।

उपनयन का महत्व - समस्त भारतीय संस्कारों में उपनयन संस्कार का महत्व सर्वाधिक मान ागया है क्योंकि गौतम धर्मसूत्र का मत है कि इस संस्कार से पूर्व बालक किसी भी तरह का आचरण करें कोई दोष नही होता ।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस संस्कार का द्विविध महत्व है एक ओर यह संस्कार व्यक्ति को नियमबद्ध जीवन में प्रविष्ट करता है और उसकी धार्मिक एक आध्यात्मिक उन्नति का द्वारा खोल देता है तो दूसरी ओर यह संस्कार वे विद्या का मार्ग खोलकर मानसिक और बौद्धिक विकास मे भी अभूतपूर्व योग प्रदान करता है ।[42]

उपनयन के बाद वेदारम्भ संस्कार के पश्चात समावर्तन संस्कार के समाप्त होने पर विवाह होता है ।

गुरूदीक्षा, शिक्षा, गुरूशिष्य सम्बन्ध - गुरूकुल व्यवस्था मे सर्वप्रथम गुरूशिष्य सम्बन्ध को स्पष्ट करना - उचित होगा, तुलसी दास जीने अपने रामचरित मानस के आरम्भ मे ही गुरूवन्दना की है उन्होंने-

बंदउँ गुरू पद कंज, कृपा सिधु नररूप हरि
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर

कह करके यह स्पष्ट किया है कि कृपा के समुद्र और मनुष्य रूप में विष्णु जैसे गुरूदेव के चरण कमलों की मै वन्दना करता हूँ जिनके वचन महामोहरूपी धने अन्धकार को हटाने के लिए सूर्य किरणों के समूह है ।

बदउँ गुरू पद पदुम परागा सुरूचि सुबास सरस अनुरागा
अमिय मूरिमय चूरन चारू, समनसकल भव रूज परिवारू
सुकृति संभुतन विमलविभूति मंजुल मंगल भोद प्रसूती
जनमन मंजुमुकुर मलहरनी किएँ तिलक गुन गनबस करनी
श्रीगुरूपद नखमति गनजोती सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होंती
दलन मोह तय सो सप्रकासू, बड़े भाग उर आवइ जासु
उधरहि विमल बिलोचन हीके, मिटहिं दोष दुख भवरजनी के
सूझहि रामचरित मनि मानिक गुपुत प्रगट जंह जों जेहि, खानिक
जथा सुअंजन आंजि दृग साधक सिद्ध सुजान
कौतुक देखत सैलबन भूतर भूरि निधान
गुरूपद रज मृदु मंजुल अंजन नयन अमिअ दृग दोष विभंजन
तेहिं करि विमल बिबेक बिलोचन, बरनउ राम चरित भव मोचन[44]

तुलसीदास जीने अपनी रामचरित मानस के आरम्भ मे ही गुरू महिमा का जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसका पठन करने मात्र से ही गुरू की महानता का बोध होता है । गुरू क्या कर सकते हैं वे कितने समर्थ होते हैं इसका ज्ञान हमें प्राप्त होता है ।

जब गुरू ऐसे हो तो उनके शिष्य भी श्रीराम भरत लक्ष्मण व शत्रुघ्न जैसे ही होंगे -

प्राचीनकाल मे शिष्य को पठन पाठन के लिए गुरू के आश्रम जाना होता था वही पर वे गुरू से ज्ञान प्राप्त करते थे । चूंकि इन नियमों से राजा भी बन्धा हुआ होता था अतः उसके पुत्रों को भी नियमानुसार वेदाध्यन के लिए गुरू के यहां जाना होता था -

गुरूगृह गये पठन रघुराई, अल्प काल विद्या सब आई[45]

प्राचीन भारत में विद्याध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता था वैदिक काल से ही विद्या को मुक्ति मार्ग कहा जाता है । इसलिए गुरू वह होगा जो मुक्ति का मार्ग दिखाये अतः गुरू का महत्व बहुत अधिक होता है । प्राचीन काल में गुरू अपने शिष्य को ज्ञान देने

के साथ समाज व संस्कृति की उन्नति का मार्ग भी प्रदर्शित करता था । वह उसका जीवन गठन स्वयं सतर्क व सचेत होकर करता था । गुरू अपने शिष्य को छात्र कह कर सम्बोधित करता है उसका तात्पर्य यह होता है कि वे उसको ढककर सभी दोषों से बचा लेते हैकं । ताकी किसी भी प्रकार का दोष उसे स्पर्श न कर पाये गुरू शिष्य का सम्बन्ध इतना अधिक निकट का होता था कि छात्र को उसके गुरू के नाम से ही पुकारा जाता था या परिचित किया जाता था ।

पाणिनि के शिष्य को पाणिनीय कहा जाता था ।[46]

प्राचीन काल में गुरू और शिष्य सम्बन्ध इतने मधुर और आदर्शपूर्ण थे कि वर्तमान समय मे वे अकल्पनीय लगते है । उसमें उनका आपसी सोहार्द सर्वोपरि होता था । दोनों ही अपने कर्तव्यों के प्रीति जागरूप रहते थे । शिष्य गुरू को अपने पितातृत्य व गुरू शिष्य को पुत्र वत आदर व स्नेह देते थे । गुरू को अपने शिष्य के ज्ञानार्जन के साथ साथ उसकी आवश्यकताओं का भी पूरा ज्ञान रहता था गुरू माता का स्नेह उन्हे सदैव प्राप्त होता रहता था ।

चूंकि वे एक ही स्थान पर एक परिवार के सदस्यों की तरह से कहते थे अतः उनमें आपसी प्रेम भी अत्यधिक होता था, प्रत्येक छात्र को अनिवार्य रूप से ''गुरूकुल'' मे ही रहना होता था इस नियम से किसी को भी मुक्त नही रखा जाता था । छात्र के मुख मृदु मे रहने के कारण उसे गुरू के पर्याप्त निकट आने का अवसर मिलता था वह गुरू के प्रत्येक कार्य कलाप से परिचित रहता था तथा उन्हे अपने जीवन मे ढालने का प्रयत्न करता था ।[47] गुरू छात्री का पूरापूरा ध्यान रखते थे वे व छात्र भी उन्हे मातापिता व देवता के तुल्य मानते थे । वे अपने गुरू को अत्यन्त आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे । प्रत्येक छात्रतनमन धन से गुरू की सेवा करना अपना कर्तव्य था अध्ययन व स्वाध्याय के अतिरिक्त छात्रों का अधिकांश समय गुरूसेवा मे ही व्यतीत होता था । वे नित्य गुरू के लिए भिक्षा

मांगकर लाते थे उनकी गाये चराते थे । वन के लकड़ी चुनकर लाते थे और गृह की काष्ठ की आवश्यकता की पूर्ति करते थे । वे बिना किसी भेद भाव के इन सारे कार्यों को करते थे । वहां एक राजकुमार व गरीब छात्र में कोई भेदभाव नही रखा जाता था उन्हें वहां पर यदि कोई भूल हो जाये तो उसे सुधारना व उसका पश्चाताप करना भी सिखलाया जाता था । उन्हे वहां दंभ से रहित सादर जीवन व्यापन करने का उपदेश भी दिया जाता था । सारे छात्र उस कार्य को करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे जिससे गुरू का हित होता हो । याज्ञवलक्य संहिता मे यह उल्लेख आया है कि गुरू सेवा में छात्र को अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

छात्र के कर्तव्य :-

गुरू की आज्ञा पालन करना छात्र का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व था महाभारत, मनुस्मृति तथा विष्णु संहिताओं में अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है कि छात्र को अपने गुरू का किसी भी दशा में अपमान नही करना चाहिए, गुरू के समक्ष नीचे बैठना उनके समक्ष विनम्रतापूर्वक प्रश्न करना नीची नजर करके या शीश झुकाकर बातं करना गुरू आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता था गुरू की आज्ञा का पालन करना आवश्यक होता था । गुरू की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले छात्र को गुरूकुल से निष्कासित कर दिया जाता था । मुख्यतः छात्र एक गुरू के पास से दूसरे गुरू के पास नही जाते थें । अकारण गुरू को त्याग देनेवाले को पंतजलि ने कौवा कहा है ।

गुरु के भी कुछ कर्तव्य - यदि छात्र अपने गुरू के प्रतिदायित्वों का निर्वाह करते थे तो गुरू को भी छात्रों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था । वैदिक काल में गुरू को छात्र का मानस पिता (Spiritual Father) के रूप में दर्शाया गया है गुरू का व्यवहार अपने छात्रों के प्रति सहृदयतापूर्ण होता था वह उनसे सदैव उदारता व स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था । बिमार छात्र की सेवा का

दायित्व भी गुरू पर होता था और यह सेवा शुश्रूषा अत्यन्त लगन और स्नेह के साथ करता था । गुरू अपने विद्यार्थियों को अपने परिवार का एक सदस्य मान कर उनके भोजन वस्त्र निवास आदि का प्रबन्द करता था । छात्र निःसंकोच अपने दुःख को गुरू के समक्ष कह सकते थे और गुरू भी उनकी हर शंका का समयोचित समाधान करता था गुरू का सदैव यही प्रयत्न होता था कि वे उनको अधिक से अधिक ज्ञान प्रदान कर सकें ।

प्राचीनकाल में गुरू व शिष्य दोनो ही का चरित्र उज्वल और गौरवमय होता था । वे सादगीपूर्ण बुद्धिमत्तापूर्वक, उच्चविचारों के साथ संयमपूर्ण दिन चर्या को व्यतीत करते हुए अपनी मानसिकता का संतुलन बनाते हुए इन्द्रियों पर संयम रखकर सत्य पथ पर चलते थे । छात्रों को गुरू के द्वारा ही चारित्रिक दृढ़ता की शिक्षा प्राप्त होती थी । उन्हे गुरू के मार्गदर्शन के द्वारा ही ग्राह्य व त्याज्य करने योग्य बातों का ज्ञान प्राप्त होता था । छात्र सदैव गुरू का ही अनुसरण करते थे । व गुरू भी अपने जीवन को आदर्शस्वरूप प्रदान करने मे तत्पर दिखाई देता था । क्योंकि यदि छात्र उनका अनुकरण करे तो उन्हे अपने दैनिक दिनचर्या में अनुकरणीय बनना आवश्यक होगा ।

प्राचीनकाल से ही धनोपार्जन हेतु शिक्षा को प्रदान करने वाले शिक्षकों को शुद्र कहा गाय है । छात्र गुरूकुल के नियमों का पालन गुरूकुल को छोड़ने के बाद भी करता था वह अपने जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों को प्रदान करने के उपलक्ष्य में जीवन भर गुरू का ऋणी होता था । एवं सम्पूर्ण जीवन मे अपने गुरू का समयोचित स्मरण भी करता था ।[48] राम भी अपने गुरू की आज्ञाओं का पालन करते हुए दिखाए गये ।

विश्वामित्र जब राम व लक्ष्मण को राक्षसों के नाश करने के लिए दशरथजी से पूछकर अपने साथ वन में ले जाते है तब वे गुरू आज्ञाओं का ही पालन करते हैं ।

जब भरत चरणपादुका लेकर राज्य करते हैं तब भी वे गुरू आज्ञा ही शिरोधार्य करते हैं ।

शिक्षा को मनु ने तीसरे नेत्र के रूप में वर्णित किया है -

ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रम् [49]

प्राचीनकाल में विद्या अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता था । वैदिक काल से ही विधा को मुक्ति मार्ग कहा जाता है[50] वर्तमान समय के शिक्षाविदों की तरह से ही प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा को विस्तृत एवं संकीर्ण दोनों ही अर्थ मे लिया । व्यापक मायने में शिक्षा का मतलब आत्मविकास और आत्मसुधार से लिया गया है । शिक्षा की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती है विद्या विनय प्रदान करती है विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन की प्राप्ति होती है, धन से धर्म तथा सुख की प्राप्ति होती है । भर्तुहरि ने तो साहित्य सङ्गीत और कला विहीन को साक्षात पशु ही माना है ।

सुभाषित-संग्रह मे एक स्थान पर उल्लेख किया गया है - ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है जो उसे समस्त तत्वों के मूल को समझने की योग्यता प्रदान करता है और उसे उचित व्यवहार करने मे प्रवृत्त करता है । जिसके पास शिक्षा का प्रकाश नही है वह अन्धा है शिक्षा सुधार का माध्यम है इससे बुद्धि और विचार शक्ति पैदा होती है । बिना शिक्षा के जीवन व्यर्थ है । शिक्षा विहिन ब्राह्मण शूद्र के सदृश्य माना गया है । शिक्षा पक्षपात दूर करती है हमे बुद्धि सम्पन्न एवं संतुलित बनाती है ।[51] यदि हम बुद्धिमान होंगे तो ही हम दूसंरे के दृष्टिकोण को समझ सकेंगे । शिक्षित मनुष्य विवेकी होता है, वह अपना भलाबुरा समझने की योग्यता रखता है ।

प्राचीन काल में शिक्षा के निम्न उद्देश्य थे (1) ब्रह्मचारी के चरित्र का रूपान्तर एवं उत्तम संस्कारों तथा अभ्युदय के लिए सक्षम बनाना[52] (2) उनमे नैतिक भावनाओं का सम्यक विकास उनके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, नागरिक व सामाजिक कर्तव्यों के पालन की भावना

करना सामाजिक योग्यता तथा सुख वृद्धि राष्ट्रीय परम्पराओं और संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार-वैदिक युग की शिक्षा पद्धति के स्वरूप का विवेचन करते हुए पं. मोहनलाल महतो वियोगी ने लिखा है - वैदिक युग के ऋषियों ने कामना की है कि हमारी बुद्धि ईश्वरीय तेज से तेजोमय हो न कि अविद्या के मद से उद्धत तथा उन्नत शिक्षा देने की पद्धति भी पूर्णनिष्ठापूर्वक तपोमय जीवन एवं पवित्र आचरण के साथ चलती थी पवित्र तथा उच्च साध्य के लिए पवित्र एवं उच्च साधन की आवश्यकता उनका मूलमंत्र था । विद्यारम्भ के प्रथम चरण में ही आचार्यकरण (उपनयन होता था)[53] प्राचीन शिक्षा पद्धति की दो विशेषताएँ योग्य थी ।

(1) पहली - स्त्रियाँ बौद्धिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भाग लेती थी जैसे गार्गी ने दार्शनिकों की परिषद के समय उच्च ज्ञान के विषयों पर भाषण दिया या मैत्रयी जिसने उच्चतम ब्रह्म विद्या प्राप्त की । ऋग्वेद मे भी विश्वबरा घोषा, अपाला सदश्य स्त्रियोंने मंत्रो की रचना की।

(2) ज्ञान के क्षेत्र में क्षत्रियों का सक्रिय भाग है जो विद्या के उपासक और संरक्षक के रूप में राजाओ ने लिया है जिनमे विदेह के राजा जनक अति प्रसिद्ध थे । पांचाल के राजा प्रवहण जैवलि भी इनमे थे जिन्होंने शिक्षक दालभ्य श्वेतकेतु और उनके पिता उद्दालक इन ब्राह्मणों विद्वानों को भी उपदेश दिया । ब्रह्म विद्वानों में अग्रणी नारद ने स्वयं अनेक विद्वायों मे पारंगत होते हुए भी आत्मविद्या के विषय मे सनत कुमार से उपदेश लिया (कौशीतकि ब्राह्मण)[54]

चाणक्यने अपने नीति ग्रन्थ मे लिखा है विद्या कामधेनु के समान होती है, विद्या परदेश मे माँ के समान होती है जिस प्रकार माँ संतान का कारण और सहजभाव से हित चाहती है उसी प्रकार विद्या मनुष्य का सदैव हित करती है संतान मा के आश्रय में निश्चिन्त रहती है उसी प्रकार विद्या मनुष्य का हित करती है ।[55] विद्या मे कामधेनु का गुण होता है अर्थात वह अपनी साधना करनेवाले को उसका अभीष्ट उसे तत्काल देने मे समर्थ है यहां तक कि दुर्भिक्ष

जैसी संकट की घड़ी में भी उसे भूखा नही मरने देती है ।[56]

प्राचीन काल मे कहा गया है कि राजा का सम्मान केवल अपने देश में होता है परन्तु विद्वान को हर स्थान पर सम्मान मिलता ।[57]

रामायण में शिक्षण का मनुष्य का सबसे बड़ा नेत्र कहा है- उस काल की शिक्षा निःशुल्क[58] आचार्य चाणक्य के अनुसार विद्वान व्यक्ति परदेश में भी किसी प्रकार के अकेलेपन की चिन्ता से पीड़ित नहीं होता है। विद्या एक गुप्त धन है अर्थात् वह धन जो दिखाई नही दे परन्तु सदैव सुरक्षित रहे व विश्वसनीय रहे उसका हरण नही हो सकता है उसका विभाजन नही हो सकता है ।[59] प्राचीन काल में शिक्षा मे- धर्म, कला, शिल्प एवं विज्ञान सभी का समावेश होता था-

शिक्षा के विषय निम्न है - (1) चारवेद (2) इतिहास पुराण (3) पितरों से सम्बन्धित विद्या (4) राशिया गणित (5) देव या प्राकृतिक शक्तियाँ (6) निधि खानों की विधा (7) वाकोवाक्य तर्कशास्त्र - एकाय (नीति शास्त्र) (9) देवविद्या (10) ब्रह्मविद्या (11) भूतविज्ञा प्राणीशास्त्र (12) शास्त्र विद्या शुद्ध की शिक्षा (13) नक्षत्र विहार (14) अर्पविद्या तथा (देवजन विद्या शिल्प और कलाएँ) ।

वैसे वेदा छ्ययन करके ही ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम मे प्रवेश कर सकता था । रामायण तथा महाभारत काल मे शिक्षा के नियमों में कठोरता आ गई थी ।[60] प्राचीनकाल में छात्र जो कुछ पढता था उसका नाम अध्ययन के विषयों के अनुसार होता था जैसें छन्द का अध्ययन करनेवाले का नाम छान्दस, व्याकरण का अध्ययन करने वाले का नाम वैयाकरण, निरूत्मका विद्यार्थी नैरूक्त, वैदिक अग्निष्टोम, वाजपेय, (यहाँ पर इसे दोहराना आवश्यक होगा कि छात्र अपने गुरू के नाम द्वारा ही जाना जाता था पाणिनि के शिष्य को पाणिनीय कहा जाता था) जो अध्यापक जिस विषय का विद्वान होता था वह अपने विषय के अनुसार उपाधि धारण करता था । वेद व छन्दों को पढाने वाला

श्रोत्रिय, वेदार्थों को पढानेवाला प्रवक्ता कहलाता था ।[61]

रामायण काल में सर्वप्रथम राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न के लिए कहा गया है -

गुरू गृह गये पठन रघुराई
अल्पकाल विद्या सब आई

जाकी सहज स्वास श्रुतिचारी, सो हरि पढ यह कौतुकभावी
विद्या विनयनिपुन गुन सीला, खेलहि खेल सकल नृपलीला ।

जब चारों भाइ बाल्यावस्था को पार लेते है तब गुरू गृह अर्थात् गुरू कुल जाते हैं एवं बहुत ही कम समय मे सब विधाओं को प्राप्त कर लेते हैं । चारों वेद जिनकी स्वाभाविक स्वांस है वे हरि पढे यहा बड़ा कौतुक है वे तो स्वाभाविक ही विद्या विनय गुण और शील में निपूण है और राजलीला के सब खेल खेलते हैं ।[62]

रामायण के राम विश्वामित्र तथा वशिष्ठ जैसे गुरू जनों का आदर करके भारतीय संस्कृति के स्वरूप को मूर्तिमान कर देती है । महाभारत के सुदामा व श्रीकृष्ण भी सान्दीपन के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करते हैं । रामायण काल में कौशल्या तारा सीता अत्रेयी, आदि को सुशिक्षित नारियों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । स्त्री शिक्षा का कार्य प्रायः घर पर ही होता था ।

करतल बान धनुष अति सोहा, देख रूप चर मोहा ।।

इससे यह आभास होता है कि धनुरविद्या भी सीखे थे । जोकि उस काल में आवश्यक था तभी तो उन्होंने ताड़का का वध किया-

चले जात मुनि दिन्ह दिखाई सुनि ताड़ का क्रोध करि घाई ।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा दीनजानि तेहि निज पद दीन्हा
तब रिषि निज नाथाहि जियँ चीन्ही, विद्यानिधि कहुँ विद्यादीन्ही
जाते लागन छुधापिपासा, अतुलित बल तनु तेज प्रकासा

आयुध सर्व समर्पि के प्रभु निज आश्रम आनि
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि

उस काल में उस समय अलग-अलग प्रकार के आयुध होते थे जिसे -

बिनु, फर बान रामतेहि मारा सत जोजन गा सागरपारा,
पावक सर सुबाहुपुनि मारा, अनुज निसाचर कटकु संघारा ।[63]

इस काल की विद्या केवल पठन पाठन मात्र नही थी ऐसा ज्ञात होता है । छात्र हर तरह ओं ज्ञानी होता था मलयुद्ध, आयुद्ध युद्ध, वेदाध्ययन, हवन जब तप सभी मं पारंगत होना आवश्यक होता था।

शिक्षापूर्ण हो जाने पर छात्र अपने गुरू को गुरू दक्षिणा देता है व जीवन पर्यन्त अपने गुरू का ऋणी होता है क्योंकि गुरू ने उसे शिक्षित करके उसको धर्मपरायणता एवं धार्मिकता को ओर अग्रसर किया, उसके चरित्र निर्माण मे सहायता दी उसके व्यक्तित्व को विकसित किया, उसके उसके नागरिक एवं सामाजिक कर्तव्य का पालन करना सिखाया उसके अपने द्वारा समाज के कार्यों में कुशलता का उपयोग करना सिखलाया, उसे अपनी संस्कृति का संरक्षण व प्रसार करने की शिक्षा दी उसकी अपनी चित्त वृत्तियों पर आत्मसंयम करना सिखलाया अतः जब गुरू शिष्य में इतने अधिक गुणों का समन्वय करते हुए सभी प्रकार कि विद्याओं ने उसे पारंगत करता है[64] तो स्वाभाविक रूप से उस (छात्र को) भी अपने गुरू का ऋण को चुकाना चाहिए । गुरू शिष्य का गुरूकुल में पुत्रवत पालन करता है ।

अत्रोभक्ति वेबालः पिता भवति मंन्त्रद - प्राचीन काल में वैसे भी मंत्र देने वाला व्यक्ति पिता कहा जाता था ।[65] गुरू से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात गुरू को दक्षिणा देने का भी रिवाज था । निर्धन या असमर्थ व्यक्ति गुरू सेवा से इस ऋण को उतारते थे ।

गुरू दीक्षा - गुरू जब शिष्य को मंत्र ज्ञान देता है तो वह

गुरू दीक्षा कहलाता है । रामायण काल में गुरू राजाओं अथवा सम्पन्न लोगों के यहां रहकर की अध्यापन कराते थे । पाठ्यक्रम में धनुर्विद्या अस्त्र शस्त्र विद्या भूतविद्या कृषिविद्या राजशासन आदि का ज्ञान दिया जता था ।[66] प्राचीन काल में विद्यार्थी को कठोर परिश्रम करके ज्ञान अर्जित करना पड़ता था उसे ऋषियों के तपोवनों में रहकर मंत्रदीक्षा लेनी पड़ती थी । उन्हे गुरूकुल कहा जाता था स्मृतियों में साफ कहा गया है कि उपनयन के बाद विद्यार्थी को गुरू के निरीक्षण में रहना चाहिए राम व लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न अपने गुरू के पास रहे थे गुरू गृह गये पठन रघुराई ।[67]

गुरू कुलों में सहशिक्षा का भी उल्लेख मिलता है ।[68] ये शहर से बाहर की ओर होते थे । शान्त सुखमय एवं एकान्तस्थान मे शिक्षा केन्द्र होने के कारण शान्तिप्रद वातावरण रहता था वाल्मीकि काश्यप, मरीचि, सान्दीपनी आदि के आश्रम नगर से दूर थे ।[69] केवल गुरू जंगलों में गुरूकुलों की स्थापना करते थे ऐसा आवश्यक नही था गुरू कुल गाँवो मे भी होते थे । गुरूओं का चरित्र विद्यार्थियों को प्रभावित करता था । गुरू अधिक विद्यार्थियों की संख्या हो जाने पर वहछात्र जोकि सबसे योग्य होता था कि सहायता पठन पाठन मे लेते थे । गुरू की अनुपस्थिति में वे छात्र अध्यापन कार्य करते थे इन्हे पिति आचार्य कहा जाता था । इन गुरू कुलों में शिक्षा को पूर्ण किये जाने पर जोर दिया जाता था । सादा जीवन उच्च विचार यहां का ध्येय होता था यहां पर छात्रों को प्रातः जल्दी उठने की प्रेरणा दी जाती थी उन्हें यहां पर आत्मसंयम आत्मनियंत्रण व पवित्रता को जीवन मे आवश्यक माना जाना चाहिए । इसकी शिक्षा दी जाती थी । यहां पर सभी विधाओं मे पारंगत किया जाता था । यहां पर छात्रों को ईश्वर की प्राप्ति केवल गुरू ही अपने मार्गदर्शन के द्वारा करवाता है यह ज्ञान दिया जाता था । सभी से समानतापूर्वक वर्तन भी गुरूकूल की शिक्षा का एक अंग होता था । अध्ययन की समाप्ति पर ही सांसारिक जगत मे प्रवेश होता था गुरूकुल कें अध्ययन समाप्ति पर गुरू शिष्यों के सम्बन्धों में कोई परिवर्तन नही आता था।

वे आपसी स्नेह जीवन पर्यन्त बनाये रखते थे । अध्ययन की समाप्ति के बाद छात्रों को विवाह का अधिकार - गुरू से प्राप्त होता है तुलसी दासजी ने इसका विस्तृत वर्णन किया है । मानस में शिव पार्वती विवाह, राम सीता का विवाह उस प्रथा को स्पष्ट करता है। विवाह मानवजीवन के सोलह संस्कारों में प्रमुख स्थान रखता है ।[70] विवाह स्त्री पुरूष के जीवन का एक आवश्यक संस्कार है । समस्त संस्कारों में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है अधिकांश गृह्यसूत्रों का आरम्भ विवाह संस्कार से होता है । ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी वैवाहिक विधिविधानों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिलती है । स्वामी दयानन्द के अनुसार गृहाश्रम संस्कार का भी विधान किया है उनके अनुसार ऐद्रिक ओर पारलौकिक सुखप्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म से ही अपना तन-मन-धन लगाना तथा धर्मानुसार संतानो की उत्पत्ति करना इसी का गृहाश्रमद संस्कार है ।[71] कुछ विद्वानों के अनुसार विवाह एवं गृहाश्रम संस्का को एक ही मान लेना उचित है ।

प्राचीन ऋषियों ने स्त्री और पुरुष के सम्पर्क को विवाह की मर्यादा मे बान्धकर सामाजिक व्यवस्था को हड़ किया था वैदिक काल में वर की आयु २५ वर्ष और वधू की आयु १६ वर्ष मानी गई है । स्मृतिकाल में कन्या के विवाह की आयु कम कर दी गई ऋतुकाल से पूर्व ही उसका विवाह कर देना उत्तम माना गया ।[72] परन्तु गहराई से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि विवाह वयः सन्धि पश्चात या यौवनारम्भ बाद ही होते थे विवाह के समय राम भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न जवान थे व सीता माण्डवी उर्मिला ऋति, किर्ती युवती थी ।[73] विवाह जब होना चाहिए जब बच्चे समझदार हो जाये । विवाह उस काल मे सभी काल के लिए अनिवार्य था । सजातीय विवाहों को अधिक महत्व दिया जाता था ।

रामायण काल में 9 प्रकार के विवाह होते थे ।

बाह्मविवाह, देवीविवाह, आर्य विवाह, प्रजापत्य विवाह, गान्धर्व विवाह, आसुर विवाह, राक्षस विवाह, पैशाच विवाह स्वयंवर विवाह,

राम व सीता का विवाह स्वयंवर विवाह था । महाकाव्य काल में सामान्यतः एक पत्निकता का उल्लेख मिलता है परन्तु राजवंशों में बहु पत्नीकता प्राचलित थी दशरथ जीकी तीन पत्नी थी । परन्तु राम का सीता के प्रति अगाध प्रेम नारी अगाध प्रेम नारी के सम्मान का सूचक है परन्तु गौतम की पत्नी अहिल्या का अपरिचित पुरूष द्वारा घर्षित होने पर जड़वत जीवन व्यापन करने पर बाध्य हो गई थी इसे यह सिद्ध होता है कि नारी का शोषण भी होता था । परन्तु राम ने भी उन्हें पवित्र घोषित करके स्वर्ग स्थानीय बनाया । राम ने सतीत्व की साक्षात मूर्ति सीता को सांस्कृतिक स्तर पर महत्व देकर रावण का विध्वंस करके नारी उद्धार का प्रतिमान प्रस्तुत किया । नारियों वैसे स्वतंत्रतापूर्वक अपना पति चुन सकती थी उन्हें बाध्य नही किया जाता था ।[74]

विवाह की मुख्य क्रियाओं में वर द्वारा कन्या के व कन्या द्वारा वर के गले में वरमाला डालना है अग्नि की साक्षी देकर वर द्वारा कन्या का पाणिग्रहण तथा वर वधु अग्नि की सात प्रदक्षिणाएँ करना मुख्य है वैसे निम्न क्रियाएँ आवश्यक होती है - कन्यादान अग्निस्थापन और होम, पाणिग्रहण, अग्निपरिणयन, लाजाहोम, सप्तपदी विवाह के बाद भी कुछ मांगलिक क्रिया होती है,[75] वर द्वारा वधु को ध्रुव तारा दिखाना, आद्राक्षतारोपण, पलंगफेर विदाई के समय वर वधु के साथ बैठने पर सौभाग्यवती स्थितियों बारी बारी से आद्राक्षतारोपण करती है ।[76]

तुलसी ने शिव-पार्वती तथा राम-सीता विवाह का विशेष चित्रण किया है उन्होने सर्वप्रथम लग्नपत्रिका को देने का भी वर्णन किया है ।

लगन बाचि अज सबहि सुनाई, हरषे मुनि सब सुर समुदाई ।
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजें मंगल कलस दसहुँ दिसी साजें

फिर जब बरात आने का समय होता है तब -

जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि किजाई
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ[77]

शहर में मंगल गान होते है । सब लोगों ने अपने दरवाजों पर स्वर्ण कलश सजा दिए हैं, भोजन का जैसा भी विधान ऐसे प्रसंगों में होता है वह सब पाक शाला मे बनने लगा । और फिर ज्योनार हुई उसके बाद रिति-रिवाजों के अनुसार भोजन करते समय गाली को कैसे भूला जा सकता था तुलसी दासजी ने इसका वर्णन भी किया है -

सो जेवनार किजाई बखानी बसहिं भवन जेंहि मातु भवानी
सादर बोले सकल बराती, विष्णु विरंचि देव सब जाती
विविधपाँति बैठी जेवनारा, लागे परूसन निपुन सुआरा
नारिवृन्द सुरजेवँत जानी लगी देन गारी मृदुबानी ।।
बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ ।
समय बिलोंकि विवाह कर पठए देव बोलाइ ।।
बोलि सकल सुर सादर लीन्हे सबहि जथोचित आसन दीन्हे
बेदीबेद बिधान सवारी सुभग सुमंगल गावहिं नारी
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई करि सिगारू सखी ले आई
मुनि अनुशासन गनपतिहि, पूजेउ संभु भवानि
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर ऊनादि जिये जानि
जीसे बिवाह के बिधिश्रुति गाई, महामुनिन्ह सो सबकरवाई ।
गहि गिरिस कुरु कन्या पानी, भवहि समरुपी जानि भवानी
पानिग्रहण जब कीन्ह महेसा हिय हरषें तब सकल सुरेसा
हर गिरजा कर भयउ विवाहू सकल भुवन भरि रहा उछाहु
दाइज दियो बहु भांति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यों
का देउ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो ।
यह उमा संभु विवाह जे नरनारि कहिहे जे गाविहे
कल्यानकाल विवाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं ।[78]

इस प्रकार से तुलसी दासजी रामचरित मानस मे सीता राम के विवाह का भी वर्णन किया है वह विवाह स्वयंवर विवाह था जिसमें रामचन्द्र जी शिवजी का प्राचीन धनुष तोड़ते है क्योंकि सुकुमारी सीता जी उस धनुष का ध्यान रखती थी अतः वे उस धनुष की प्रत्यंचा चढानेवाले से ही उनका विवाह करेंगे ऐसी शपथ जनक जीने ली थी ।

सोई पुरारि कोदंडु कठोरा, राजसमाज आजुजोइ तोरा
त्रिभुवन जय समेत बैदेही, बिनहिं बिचार बरइ हठि तेहि
सुनिपन सकल भूप अभिलाषे, भटमानी अतिसय मन माखें
परिकर बान्धि उठे अकुलाई, चले इषदेवन्ह सिरनाई[79]
तमकि ताकि तकि सिव धनु धरहि, उठइ न कोटि भांतिबल करहिं
जिन्ह के कछु विचार मन माहि, चाप समीप महीप न जाही ॥

वह शिवजी का धनुष उठाना इतना सहज नही था क्योंकि -

भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरहि न टारा

अब जनि कोउ माखे भटमानी, बीरबिहीन महि मे जानी ।
तजहु आस निजनिज गृह जाहू लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥

यह सब सुनकर लक्ष्मण जी क्रोधित होते हैं और कहते हैं कि-

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई, तेहि समाज अस कह इन कोई
रघुवंसि चाहे तो सब कुछ कर सकते हैं यदि तुम कहो तो-
जो तुम्हारि अनुसासन पावौ कंदुकइव ब्रह्मांड उठावौ ।
काच घट जिमि डारो फोरी, सकउँ मेरू मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना कोबापुरों पिनाक पुराना ॥
नाथ जानि अस आयुस होऊ कौतुक कैरो बिलोकिअ सोऊ ॥
कमल नाल जिमि चाप चढावौ जोजन सत प्रमान लेधावौ ॥
लखन सकोप बचन जे बोले, डगलगानि नहि दिग्गज डोले
सकल लोग सबभूपडराने सिय हिय हरषु जनकु सकुचाने

विश्वामित्र समय सुभजानि बोले अति सनेह मयबानी
उठहु राम भजहु भव चामा मेटहु तात जनक परितापा,
गुरुहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा, अर्तिलाघव उठाई धनु दीन्हा
ढमकेउ प्रनामु मनहिं मन कीन्हा, आर्त लाघव उठाई धनु दीन्हा
ढमकेउ दामिनिजिमि जबलयउ प्रुनि नभ धनुमंडल समभयऊ ।

प्रभु दोउ चापखन्ड महिडारे देखि लोग सब भए सुखारे
कौसिकरूप पयोनिधि पावन, प्रेमबारि अवगाहु सुहावन ।।[80]

यहां पर तुलसी दासजी ने धनुषभंग के माध्यम से रावण व बाणासुर ज़िस धनुष को छू भी नहीं सके उसी धनुष को श्री राम के हाथों टूटता बताकर श्रीराम के पराक्रम के आगे रावण की निरबलता को प्रदर्शित किया है ।

जनक कीन्ह कौसि कहि प्रनामा, प्रभुप्रशाद धनुभजेहु रामा
भोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँभाई अबजो उचित सो कहिअ गोसाई
कह मुनि सुनुनरनाथ प्रभीना रहा बिबाह चाप आधीना
टूटत ही धनुभयउ विवाहूँ सुन नरनाग बिदित सबकाहू
जदपिजाई तुम्ह करहु अब जथाबंस व्यवहार
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुरू बेदबिदित आचारू
दूत अवधपुर पठवहु जाई आनहिं नृप दसरथहि बोलाई
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला पठए दूत बोलितेहिकाला

इस प्रकार राम व सीता के विवाह की भूमिका बनाई जाती है व जनकपुरी की सजावट शुरू हो जाती है -

हरषि चले निज निज गृह आए, पुनि परि चारक बोलि पढाए ।।
रचहु बिचित्र वितान बनाई । सिर धरि बचन चले सचुपाई ।।
हरित मानिन्ह के पत्रफल पदुमराग के फूल
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि करभूल
बेनुहरित मनिमय सब कीन्हे, सरल सपरब परहि जाहें चीन्हे
कनक कलित अहिबेलि बनाई, लाखि नहिं परह सपरन सुहाई[81]

जेहि के रचिपचि बंध बनाए बिच बिच मुकता दाम सुहाए
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा, चीरि कोरि पचि रचे सरोजा
किए भृंग बहुरंग बिहंगा, गुंजहिं कूजहिं पवन प्रसंगा
सुर प्रतिमा खंभन गढ़िकाढ़ीं मंगल, द्रव्य लिए सब ढाढीं
चौके भांति अनेक पुराई सिंधुर मनिमय सहज सुहाई
सौरभ पल्लव सुभग सुठि किए नीलमनि कोरि ।
हेम बौर भरकत धवरि लसत पाटमय कोरि ।
रचे रूचिर बरब दनिवारे, मनहु मनोभवँ फंदसँवारे
मंगल कलअ अनके बनाए ध्वज पताक पट चमर सुहाए
दीप मनोहर मनिमय नाना, जाइ न बरनि विचित्र बिताना
जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही, सौ बरने असिमति कबि केही ।।
दुलहु रामु रूप गुन सागर । सो बितानु तिहुँलोक उजागर ।।
जनक भवन कै सोभा जैसी । गृह-गृह प्रति पुर देखिअ तैसी ।।
बसइ नगर जेहिं लच्छि करि, कपट नारि बर बेषु ।
तोहि पुर के सौभा कहत, सकुचहि सारद सेषु ।।
करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ह मुदित महीप आपु उठि लीन्ही ।।
बारि बिलोचन बांचत पाती पुलक गात आई भरि छाती ।
सीय स्वयंबर भूप अनेका, समिटे सुभट एकते एका
संभु सरासन काहुँ नटारा हारे सकलबीर बरिआरा
तीनि लोक महँ जे भटमानी, सभ कै सकति संभु धनु भानी[82]
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं, भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काके, राजन राम सरिअ सुत जाकें[83]
बोर बिनीत धरम ब्रत धारी, गुन सागर बर बालक चारी ।
तुम्ह कहुँ सर्व काल कल्याना सजहु बरात बजाइ निसाना ।।
राजा सबुरनिवास बोलाई, जनक पत्रिका बाचि सुनाई ।।
सुनि संदेसु सकल हरषानीं ऊपर कथा सब भूप बखानीं ।
भुवन चारि दस भरा उछाहु जनकसुता रघुवीर बिआहू
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे मग गृह गली सवारन लागे ।
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि राम पुरी मंगलमय पावनि ।।
तदपि प्रीति के प्रीति सुहाई मंगल रचना रची बनाई ।।

ध्वज पताक पट चामर चारू छावा परम बिचित्र बजारु ।।
कनक कलस तोरन मनि जाला, हरद दूब दधि अच्छत माला ।।
बाधे बिरद बीर रन गाढ़े निकसि भए पुर बाहेर ठाढ़े ।।
फेरहिं चतुर तुरग गतिनाना हरषहिं सुनि सुनि पवन निसाना ।।
साँवकरन अगनित हय होते ते तिन्ह रथन्ह सार थिन्ह जोते
सुन्दर सकल अलंकृत सोहे जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे
जे जल चलहिं थलहि की नाई, टाप न बूड़ बेग अधिकाई
अस्त्र सस्त्र सबु साजु बनाई, रथी सार थिन्ह लिए बोलाई ।
चढि चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात
होत सगुन सुन्दर सबहि जो जेहि कारण जात ।[84]
आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान
रामहि देखि बरात जुड़ानी, प्रीति कि रीतेन जाति बखानी
नृप समीप सोहहिं सुत चारी, जनु धन धरमादिक तनुधारी ।।
सुनन्ह समेत दसरथहि देखी, मुदित नगर नर नारि विसेषी
सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना, नाकनटीं नाचहिं करि गाना ।
प्रथम बरात लगन तें आई तातें पुर प्रमोदु अधिकाई
रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि द्रोउ राज
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज
मंगल मूल लगन दिनु आवा हिम रिपु अगहनु मासु सुहावा
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू, लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू।
सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना, बरषहिं सुमन बजाइ निसाना ।
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा, चढे विमानन्हि नाना जूथा ।।
मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं करि बैदिक लौकिक सब रीतीं
मिलत महा दोउ, राज बिराजे उपमा खोजि-खोजि कवि लाजे ।।
सकल बरात जनक सनमानी दान मान बिनती बर बानी
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराउ जे जानहिं रघुबीर प्रमाऊ ।
एहि बिधि सीय मंडपहिं आई, प्रमुदित सांति पढहिं मुनिराई ।[85]
कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं, नयन लाभु सब सादर लेहीं

उसके बाद रामजी सीता के सिर मे सिन्दुर से मांग भरते हैं।

प्रमुदित मुन्हि भांवरी फेरी नेगसिहत सब रीति निबेरीं
रामसीय सिर सेदुर सेही सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ।।
बहुरि बसिष्ठ दीहि अनुशासन बरन दुलहिनि बेठें एक आसन -

उसके बाद भरत मान्डवी लक्ष्मण उर्मिला शत्रुघ्न श्रुत कीर्ति के भी विवाह हो जाते हैं ।

इस प्रकार विवाह का वर्णन रामचरित मानस मे तुलसी दास ने किया है । जिसमें समय समय पर सामाजिक रीतियों का भी वर्णन किया है । तुलसी दासजी जैसे आज ही की सामाजिक रीतियों का वर्णन किया है ऐसा महसूस होता है (1) वर के घर आ जाने पर स्त्रियां आरती करती है इस अवसर पर कुलाचार लेनदेन की रस्में समाप्त करके अर्घ्य दे विवाह मण्डप पर लाया जाता है । (2) कन्या के पिता के द्वारा वर पूजने के बाद, गोरी पूजने के उपरान्त मंगलगीतों के साथ मण्डप में लाया जाता है (3) इसी के समय कुलाचार ब्राह्मणों गोरी गणेश पूजन होता है तथा अग्नि को प्रज्वलित कर होमादि होता है, पिता द्वारा कुशवजल लेकर कन्यादान किया जाता है । दूल्हे दुल्हन का गठबन्धन होने के बाद भाँवरि पड़ती है दुल्हा वधू के सिर में सिन्दुर देता है । दोनों ध्रुव दर्शन करते हैं । विवाह की विधि समाप्त करके वर वधु दोनों कुल देवता को प्रणाम करके अन्दर जाते हैं। बाद में कंकन खोला जाता है ये सब लोक रीतियों वैसी ही आज भी विद्यमान है ।

मरणपर्व या मृतककर्म या अन्त्येष्टि संस्कार -

मृत्योपरान्त यह संस्कार किया जाता है मृतक के शरीर को स्नान करा कर उस पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप कर शरीर को नवीन वस्त्रों में लपेट कर स्मशान मे लेजाकर शव को चिता पर रखकर प्रज्वलित किया जाता है । इसके साथ ही वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए आहुतियाँ दी जाती थी और शव भस्म हो जाता था इसके बाद तीसरे दिन अस्थि संग्रह व अस्थिप्रवाह आदि अन्य क्रियाएँ भी इसी संस्कार से जुडी है ।

तुलसी दासजी ने मानस मे राजा दशरथ तथा बालि व रावण की अन्त्येष्टि संस्कार से उपयुक्त सभी क्रियाओं का वर्णन किया है। राजा दशरथकी मरणोपरान्त उनकी वैदिक रीति से स्नान आदि कराके विमान पर लिटाया जाता है और शवयात्रा आरम्भ होती है -

रामराम कहि राम कहि, रामराम कहि राम
तनु परिहरि रघुबर बिरह राउगयेउ सुरधाम[86]
तब बसिष्ट मुनि समयसम कहि अनेक इतिहास
सोक नेवारेउ सबहिकर, निज विग्यान प्रकास
तेल नावें भरिनृपतन राखा दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा
धावहु बेगि भरत पहि जाहू नृप सुधिकतहुँ कहहु जानि काहू
नृपतनु बेदबिदित अन्हवावा परमविचित्र बिभानु बनावा
गहिपद भरत मातु सब राखी, सहिरानी दरसन अभिलाषी
चंदन अगर भार बहुआए अमित अनेक सुगन्ध सुहाए
सरजुतीर रचिचिता बनाई जनु सुरपुर सोपान सुहाई[87]
एहिबिधि दाह क्रिया सब कीन्ही बिधिवत न्हाहति लांजुलि दीन्ही
सोधि सुमृति संत वेद पुराना, कीन्ह भरत दसगत बिधाना
जहँ जस मुनिवस आयुस दीन्हा तहतस सहस भांति सबुकीन्हा
भए बिसुद्ध दिए सबदाना धेनु बाजि गज बाहन नाना
सिधासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम
दिए भरत लहि भूमि सुर जो परिपूरन काम[88]

पितु हिल भरत कीन्ह जस करनी सो मुख लाख जा इनही बरनी

जटायु -

अविरल भगति मांगिवर गीध गयेउ हरिधाम
तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम[89]

बालि -

उमादारु जोषित की नाई सबहिनचावत रामु गोसाइ
तब सुग्रीवहि आयुस दीन्हा, मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा[90]

रावण -

कृपा दृष्टि प्रभुताहि बिलोका, करहु क्रिया परिहरि अब सोका
कीन्ह क्रिया प्रभु आयुस मानी विधिवत देसकाल जिय जानी[91]

इस प्रकार दशरथजी, जटायु, बालि व रावण सभी की अन्तिम क्रियाएँ यथायोग्य प्रकार से स्पष्ट की गई है ।

सम्बन्ध -

भाई-भाई - तुलसीदास जी का उद्देश्य मध्यकाल की उस अराजक स्थिति मे जहां राज्यलिप्सा के लिए भाई-भाई को मौत के घाट उतार रहा था । ऐसी अवस्था में उन्होंने राम व लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न के आपसी प्रेम सम्बन्धों को उनकी मर्यादाओं को उनकी त्याग की भावनाओं को उनकी आस्था को अपनी सशक्त लेखनी के द्वारा स्पष्ट किया है । तुलसीदास को जो आदर्शवादी मूल्यप्रिय है उन्हे वे पात्रों के माध्यम से भी व्यंजित करते हैं और इस दृष्टि से भरत उनकी चेतना के सबसे निकट है भरत की चरित्र सृष्टि ने तुलसी ने अपनी भावनामयता का सर्वाधिक उपयोग किया है ।[92] क्योंकि उन्होने उन्हे भ्रातृत्व मे आकण्ठ डूबा हुआ प्रस्तुत किया है । राम भी उन पर उतना ही स्नेह व विश्वास करते हैं।

भयउन भूअन भरत समभाई,
इसके अलावा - भरतहि होई नराज मदु

विधि हरिहर पढ पाई
कबहु कि काँजीसीकरनि
धीरसिंधु बिनसाइ[93]

तुलसी दास ने मध्यकाल की टूटती हुई सम्मलित कुटुम्ब व्यवस्था का समाधान भरत का माध्यम बना कर प्रस्तुत करना चाहा । दूसरी ओर राम का स्नेह भरत के प्रति भी उतना ही बताया गयाहै जितना भरत काराम के प्रति था ।

भरत सहिस को राम स्नेही ।
जगु जपराम रामु जप जेहि ॥

तुलसी दास जीने उस काल मे भाइयों का आपसी युद्ध देखा था उनके काल में जयचन्द हो चुके थे जिन्होने अपने ही भाई को शत्रु से मिलकर परेशान किया था । परन्तु भरत को भ्रातृप्रेम के आगे न राजमद आया नही उन्हें मध्यकालीन राजाओं की तरह से भातृविद्रोह ही आया वे तो परम विनयी और बड़े भाई राम के अनुगामी है वे तो अयोध्या के राजपाठ को उस भ्रातृप्रेम के आगे तुच्छ समझते हैं । इसके अलावा देखा जाय तो राम भी भरत के लिए सब कुछ छोड़कर चले जाते हैं । वर्तमान काल के भाइयों की तह से विद्रोह नही करते हैं । वरना उस काल मे भी भाई से भाई राज्य छीन लेता था । बालि ने सुग्रीव का राज्य व पत्नी दोनो ही छीन लिया था -

सुग्रीव ने खुद कहा था -

रिपु सम मोहि मारेसि अतिभारी, हरि लीन्हेसि, सर्बसु अनुनारी

या फिर

मै जो कहा रघुबीर कृपाला बन्धु नहोई मोर यह काला ।[94]

उस स्थान पर भरत व राम का आपसी प्रेम व त्याग आदर्शरूप

मे आज भी प्रशंसनीय है ।

लक्ष्मण सदैव अपने भाई के प्रति समर्पित रहे हैं वे एवं शत्रुघ्न दोनों ही भाई अपने बड़े भाइयों की सेवा में ही अपना जीवन लगा देते हैं, वनवास राम को मिला था उनके साथ सीताजी भी थी पर लक्ष्मणजी व शत्रुघ्न ने तो केवल भ्रातृप्रेम के लिए वनवास व नन्दीग्राम को अपना स्वर्ग मान लिया था । वेदो ने भी त्याग की साक्षात मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। लक्ष्मण की निष्ठा अतुलनीय है । उन्होने कभी भी अपना स्वार्थ नही देखा उनकी मर्यादा अतुलनीय थी ।

तुलसी दास जीने इन भाइयों के प्रेम व त्याग के द्वारा आदर्श मानवीय मूल्यों को पुनः स्थापित करना चाहा है । तुलसीदास जीने बड़े भाई के रूप में रावणका भी चित्रण किया है - रावण ने अपने कूबेर का राज्य छीन लिया था दूसरे भाई विभिषण को देश निकाल दे दिया था वही पर राम व उनके भाइयों का स्नेह अप्रतिम था तुलसी ने इसे ही प्रस्तुत किया है । माता व पुत्र - माता एवं पुत्र के सम्बन्धों में तुलसीदास ने हर जगह अपने आदर्श मूल्यों की स्थापना ही की है उन्होंने कौशल्या एवं राम, भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न व आरमभ में कैकयी व राम व पुनः लक्ष्मण व शत्रुघ्न व सुमित्रा के सम्बन्धों का बडी निपूर्णता से चित्रण किया है ।

कौसल्या का व्यक्तित्वल वात्सल्य से आपूरित है उनका सम्पूर्ण आनन्द अपने पुत्र राम पर ही केन्द्रित था क्योंकि उनसे विवाह के पश्चात भी राजा ने दो ओर विवाह किये थे अतः उन्हे अपने आत्मसम्मान को राम के स्नेह मे ही पाया था उसी पुत्र को पुनः निर्वासित किये जाने पर उनकी पीड़ा असह्य हो चुकी थी -

वचन बिनीत मधुर रघुबर के, सरसम लगे मातु उर करके
सहमि सूखि सुनि सीतलबानी, जिमि जवास परें पावस बानी[95]

परन्तु सारी बातें सुमन्त्र पुत्र से जानकर भी उन्होंने धीरज धारण करते हुए राम को पिता की आज्ञा मानने की सलाह दी-

तात जाऊं बलि कीन्हेहुनीका पितु आयुस सब धरनक टीका
राजदेनु कह दीन्ह बनु मोहिनसो दुख लेसु
तुम बिनु भरतहिं भुपतिहि प्रजहि प्रचन्ड कलेसु

यहां पर तुलसी दास जीने माता का स्थान पिता से बड़ा होता है इसे भी स्पष्ट किया है -

जो केवल पितु आयसु ताता, तो जनि जानि बड़ि माता

जो पितु मातु कहेउ बन जाना, तो कानन सत अवध समाना ॥

यहां माता पुत्र को गलत शिक्षा नही देती है वाल्मीकि रामायण में कौशल्या जी दशरथ को खरीखोटी भी सुना देती है फिर उनकी वेदना जानकर दुखी होती है[96] और भरत पर व्यंग्य करती है पर तुलसीदास जी की कौशल्यामाता की नजर मे तो - रामु भरतु दोउ सुत सम जानी । समभाव है उन्हे तो रामलक्ष्मण भरत शत्रुघ्न मे फर्क नही दिखा है । कैकयी को शुरू से ही राम प्रिय थे यह सर्वविदित है परन्तु वह पुत्र मोह मे अपने कर्तव्य पालन को भी भूल जाती है वे ही राम तो उन्हे प्राणों से प्रिय थे उनकी ही आंख की किरकिरी बन जाते हैं । उन्हें वनवास भेजकर ही वह संतुष्ट होती है भरत के लिए राज्य का वरदान प्राप्त होने पर व यह समझती है कि यदि राम अयोध्या में रहेतो भरत कभी भी राज्य स्वीकार नहीं करेंगे अतः वह उन्हे वनवास भेजर संतुष्ट होती है यहां पर तुलसी दासजीने दो माताओं व दो पुत्रों को माध्यम से अलग-अलग नारी का चित्रण किया है । भरत अपनी माता मुख देखना भी पसन्द नही करते हैं उन्हें तो केवल कौशल्या से ही अगाध प्रेम है । कैकयी को तो वे अपने व्यंग्य बाणों से घायल कर देते हैं -

हंसबंसु दसरथजनकु राम लखन से भाई
जननी तू जननी भई बिधि बन कछु न बसाई[97]
रामबिरोधी हृदय ते प्रगट कीन्ह विधि मोहि
मोसमान को पात की बादि कहुउँ कछु तोहि

दूसरी ओर कौशल्या जीको देखकर वे अपना धीरज खो देते हैं तो कौशल्या उन्हें राम ही की तरह से स्नेह करती है -

सर सुभाय मायँ हियँ लाएं अतिहित मनहुँ राम फिर आए[98]

यहां पर तुलसीदास जीने अलग-अलग प्रकार से माता व पुत्र के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण किया है । कौशल्या चूंकि समभाव रखती थी अतः सभी उन्हे एकसमान प्रेम करते थे । सुमित्रा व लक्ष्मण व शत्रुघ्न दोनों भाइयों व माता के सम्बन्धों को देखने पर यह ज्ञात होता है कि माताने अपने दोनों पुत्रों को केवल त्याग व सेवा मे ही सच्चा सुख है यह समझाया -

पूछे मातु मलिन मनदेखी, लखन कही सबकथा बिसेषी
गई सहमि सुनिबचन कठोरा मृगी देखिदवजनु चहुओरा
धीरज धरेउ कुअवसरजानी, सहज सुहद बोली मृदुबानी
तात तुम्हारि मातुबैदेही पिता राम सब भाँति सनेही
अवध तहाँ जहँ रामनिवासू तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासु
जौपै सीय रामु बन जाही, अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं
पुत्रपती जुबती जग सोई, रघुपति भगतु जासु सुतु होई
तुम्हरेहि भाग रामुबन जाहीं दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।[99]

इस प्रकार माता सुमित्रा अपने पुत्र को राम व जानकी की सेवा का आदेश देते हैं ।

तुलसीदास जीने उस युग में माताओं को अपने पुत्रों को राज्यों की प्राप्ति के लिए युद्धों का प्रोत्साहन देते हुए भी देखा था और उसी का चित्रण उन्होंने कैकई के चरित्र मे किया है कौशल्या व सुमित्रा उनकी आदर्शनारियाँ थी जो अपना जीवन त्याग व संयम से व्यतीत कर अपने पुत्रों में भी वे ही संस्कार देती है । राम अपने वनवास का कारण कैकई है यह जानते हुए भी अपने मन मे कुछ बुरा नही सोचते हैं चूंकि वे अपने कुल की मर्यादा को जानते थे-

रघुकुल रीति सदा चलि आई प्रान जाहुँ बरू बचन न जाई ।।

इसीलिए उन्होंने अपने पिता माता की आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी माता को कहा कि -

पिता दीन्ह मोही काननराजू, जहँ सब भांति बड़काजू

इस प्रकार हर जगह पर राम व लक्ष्मण के चरित्र चित्रण के समय व भरत शत्रुघ्न के चित्रण मे तुलसी दास जीने मर्यादा स्नेह दोनों ही को समानरूप से साथ रखा है ।

पति पत्नी -

मानस मे तुलसीदास जीने पति पत्नी के सम्बन्धों को सदैव मर्यादा के आवरण मे रखकर उस काल के वातावरण से अलग रखने का प्रयास किया है ।

उन्होंने सदैव राम को तात व सीता जीको माता सम्बोधित किया है यहां पर उन्होंने केवल उनका कर्तव्य पालन उनका मर्यादित आचरण ही उन्होंने चित्रित किया है ।

पुष्पवाटिका प्रसंग में भी उन्होंने इस मर्यादा को नही छोड़ा है-

तेहि दोउ बधु बिलोकें जाई प्रेमबिबस सीता पहिं आई
राम लक्ष्मण को देखकर सखी सीता के पास आई
देखन बागु कुअँर दुर आए बय किसोर सब भांति सुहाए
स्याम गौर किमि कहौ बखानी गिरा अनयन नयन बिनु बानी

सीता जी उसी सखि को साथ लेकर उन्हे देखने जाती है -

चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई, प्रीति पुरातन लखइन कोंई
सुमरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत
चकित बिलोक्ति सकल दिसि जनु सिसुमृगी सभीत

उधर राम भी लक्ष्मण से कहते हैं कि -

तात जनक तनया यह सोई धनुषजग्य जेहिकारन होई
पूजन गौरि सखी लै आइ करत प्रकास फिरह फुलवाई[2]

यहां पर तुलसी दासजीने दोनों के हृदय के मनोभावों को स्पष्ट करते हुए यह भी बताया है कि-

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा सहज पुनीत मोर मनछोभा

सो सब कारन जान बिधाता करकहि सुभद अंग सुनभ्राता

रघुबंसिन्हकर सहज सुभाउ मनकुपंथ पग धरइ न काउ

मोहि अतिसय प्रतीति मनकेरी जेहि सपनेहुँ परनारि नहेरी[3]

यहां तुलसीदास जी उनदोनों की बातों से इस बात का स्पष्टीकरण कर देते हैं कि वे दोनों यह जान गये हैं कि उनकी लीला प्रकट करने का समय आ गया है साक्षात् लक्ष्मीजी व विष्णुजी नर नारी का स्वरूप लेकर ही तो अवतरित हुए हैं -[100]

जब राम को वन जाना है यह पता चलता है तो वे सीता को अयोध्यारहने की सलाह देते हैं -

मातु समीप कहुत सकुचाहीं बोले समउ समुझिमन माहीं
अपन मोर नीक जों चहहु हमार मानि गृह रहहू
काननु कठिन भयंकर भारी घोर हामु हिम बारिबयारी
कुरु कंट कभग काँकर नाना चलब पयादेहि बिन पदज्ञाना
कंदर खोह नदी नद नारे अगम अगाध नजाहि निहारें
भालु बाघ बृक केहरिनागा करहि नादसुनि धीरज भागा
भूमि सपन बलकन बसन असनकंदफलमूल
ते कि सदा सब दिन मिलहि सुबइ समय अनुकूल

राम चाहते थे कि सीताजी अयोध्या ही रह जाये ताकी वे निश्चिन्ता वनवास जा सकें क्योंकि सीता नाजुक और कमजोर है अतः उनका हित इसी में है कि तो सास ससुर की सेवा करते अपना समय व्यतीत करें यह उनके स्नेह की सीख थी । हमारे यहां पति का अनुकरण ही सबसे बड़ी अभिलाषा मानी जाती है । सुहागन का सच्चा सुख उसकी पति सेवा मे होता है अतः सीता जीने भी यही किया -

उन्होने सारे सुखों को त्याग करके राम के साथ जाना ही ठीक समझा-

दीन्हि पानपनि मोहि सिखसोईष जेहि बिधि मोर परम हित होई
मै पुनि समुझि दीखि मन माहीं पिय वियोग समदुखु जगनाही
प्राननाथ करूनायतन, सुंदर सुखद सुजान
तुम्हबिन रघुकुल कुमुद बिछु सुरपुर नरक समान
यही नही-
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई प्रिय परिवार सुहृद समुदाई
सासु ससुर गुरू सजन सहाई, सुत सुन्दर सुसील सुखदाई
जहँ लगि नाथ नेह अरू नाते पिय बिनु नियहि तरनिहुते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू पति विहीन सब सोक समाज
भोग रोग सम भूषन भारू, जम जातना सरिस संसारू
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माही मो कहु सुखद कतहुँ कछु नाही[101]

सीताजी यहां तक कहती है कि पति के बिना नारी की स्थिति-

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसिअ नाथ पुरूष बिनु नारी
नाथ सकलसुख साथ तुम्हारे सरद बिमल बिधुबदन निहारें
जहां पर पति व पत्नी का आपसी प्रेम इतनी अधिक पराकाष्ठा पर पहुँच चुका हो वहां पर भौतिक सुखों कि क्या कामना ।

तुलसीदास जीने उस मध्ययुग की ईरानी भोगवादी संस्कृति व निज स्वार्थों की पूर्ति के लिए हर रिश्ते को हीन समझने वाले समाज के समक्ष पति पत्नी के स्नेह व मर्यादा का इससे बढकर उदाहरण क्या हो सकता था इसी प्रकार अत्रि, अनसुया, का भी उदाहरण मानस

में प्राप्त होता है । संसार में माता अनसुया से बड़ी कोई भी पतिव्रता स्त्री नही हुई है । उसी प्रकार कौशल्या भी अपने पत्नी के धर्म के अनुसार ही चलती है । सुनयना जनकाजी भी पति पत्नीके रूप में आदर्श थे । कैकई को तुलसीदास जीने ऐसी स्त्री के रूप में चित्रित किया है जो पुत्र मोह के अपयश के साथ-साथ वैधव्य को स्वीकार करती है वह अपने पातिवृत्त धर्म का पालन नही करती है व दुःख का कारण बनती है । तुलसी दासजी एक पत्नी व्रत का समर्थन करते हुए बहु पत्नीवाद का खुलकर विरोध करते हैं व दशरथ जी जैसे ज्ञानी भी बहु पत्नीवाद में अपयश के भागी बनते हैं इसे स्पष्ट करते हैं । तुलसीदास जीने मानस मे पति पत्नी के सम्बन्धों का सुन्दर चित्रण किया है । यहां पर शंकर पार्वती की कथा मे भी पतिपत्नी के सम्बन्धों का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया है । पार्वती की तपस्या उनकी गरिमा मे वृद्धि ही करती है । शिव पार्वती व राम सीता की सम्पूर्ण कथा में इन दोनों सम्बन्धों का आदर्श स्वरूप दिखाई देता है ।

पिता-पुत्र

तुलसीदास जीने उस युग जिसे कि मध्ययुग कहा गया है मैं पिता पुत्र के आपसी सम्बन्धों को विकृत रूप में देखा था जहां पर पुत्र राजगद्दी के पीछे अपने पिता की हत्या तक कर देता था । सलीम का विद्रोह भी यहां सिद्ध करता है । तुलसीदास जी के हृदय म यही बात सदैव चुभती रही कि उस काल में नैतिक मूल्यों का स्थान अनैतिक जीवन व्यापन पद्धतियों ने ले रखा था केवल सत्ता की लोलुपता ही पुत्र व पिता दोनों ही का लक्ष्य रह गया था । वही पर तुलसीदास जीने अपने रामचरित के माध्यम से दशरथ जीव राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न सभी का चरित्र चित्रण करते हुए उनमें उत्तम आदर्शों की प्रतिष्ठा की जिन्हें पढकर या सुनकर प्राचीन भारतीय गौरवमयी संस्कृति की पुनर्स्थापना हो सके भारतीय जनमानस जोकि अपनी प्राचीन संस्कृति को भूल चुका था । अपनी प्राचीन गरिमामय संस्कृति को पुनः अपने आचरण में ढाल सकें इस कथा में तुलसी दासजीने अपने राम का चरित्र इस प्रकार से घड़ा है कि उनका आदर्श पुत्र का स्वरूप पाठक

के हृदय पर अपना प्रभाव छोड़ता है । यहां पर तुलसी ने सदैव पुत्र के मुख से अपने पिता का नाम कुल गोत्र आदि का परिचय करवाया है । इससे यह सिद्ध होता है कि हर पुत्र को उसके पिता की वजह से ही जाना जाता था । राम को भी दाशरथि राम कहा गया है ।

जब हनुमान जीसे उनकी प्रथम भेट होती है तब भी वे अपना परिचय इसी प्रकार देते हैं -

कोसलेस दसरथ के जाए, हम पितु बचन मानि बन आए
नाम राम लछिमन दोउ भाई, संग नारि सुकुमारी सुहाई[102]

इस प्रकार तुलसीदास जी प्राचीन परम्परा का स्पष्टीकरण करते हैं कि उस काल मे पिता के नाम के बाद ही अपना नाम लिया जाता था -

दशरथ जी को रघुवंश के पराक्रमी राजा के रूप में चित्रित करते हुए तुलसीदास जी उनके चरित्र में इस बात का भी समावेश करते हैं कि जिस प्रकार जल बिना मछली नही रह सकती है उसी प्रकार दशरथ जी राम के बिना नही रह सकते हैं इतना अगाध प्रेम उस तुलसी काल में कहां संभव था । यह सत्य है कि वे सत्यव्रथ धारी थे परन्तु उन्होंने कैकयी को यह स्पष्ट कहा था कि राम के बिना मेरे प्राण नहीं रहेंगे । उस काल में जहांगीर ने अपने बेटे खुसरो के नेत्र निकलवा दिये थे क्योंकि वह उसे शासन से हटाना चाहता था ऐसे में दशरथजी का कहना, उस काल के लिए बहुत बड़ा आदर्श दिखाई दिया था -

जीवन मोर राम बिनु नाहीं, या जीवन राम दरस आधीना[103]

इतना अधिक पुत्र पर प्रेम करनेवाले पिता कहां दिखते हैं । दशरथ ही की तरह से 'राम पितृ भक्त थे' उन्हें उनके बन जाने का जरा भी दुःख नहीं था । उन्हें अपने पिता पर गर्व था कि उन्होने शिवि दधीच हरिश्चन्द्र रत्तिदेव बलि आदि ने धरम धरेउ सहि संकटनाना

राखेउ राय सत्यमोहित्यागी तनुपरिहरेउ पेम पन लागी[104]

कहकर दशरथ को चित्रकूट की सभा में अपने पिता को सराहा भी था । यही नही दोनों पिता पुत्र को तुलसीदास जीने रामचरित मानस मे सदैव एक दूसरे के प्रति मान सम्मान व स्नेह को सदैव दर्शाते हैं तुलसी दास जीने केवल एक ही पिता पुत्र का वर्णन अपनी मानस मे नही किया है ऐसा नहीं है पुत्र के रूप में उन्होंने अंगद, मेघनाथ, अक्षयकुमार आदि सभी को अपने पिता भी अपने पुत्रों के प्रति स्नेही था । लक्ष्मण को शेषनाग के अवतार के रूप में दर्शाया गया है उनमे वह गंभीरता नही है जो राम या भरत मे है । यहां तक कि वे अपने पिता के द्वारा भरत को राज्य व राम को वनवास देने के कारण रूप थे वे अयोध्या में कुछ कहते है परन्तु गंगा किनारे मंत्री सुमंत्र के सामने दशरथ जी के प्रति कुछ कटुवचन भी कहते हैं परन्तु वे सभी बातें श्रीराम ने कहने से मना कर दिया -

पुनि कंधुलखन कही कटुबानी प्रभु बरजेबड़ अनुचित जानी
सकुचि राम निज सपथ-देवाई, लखन संदेसु कहिअ जनि जाई[105]

यहां लक्ष्मण स्पष्टवादी है उन्हें रिश्तों से अधिक स्नेह राम के चरणों से है । इस प्रकार तुलसीदास जीने मानस में पिता पुत्र के सम्बन्धों की पवित्रता व कर्तव्यपालन को स्पष्ट किया है ।

राजा-प्रजा -

तुलसी ने सम्बन्धों मे राजा प्रजा का सम्बन्ध बहुत ही स्पष्ट रूप से वर्णित किया है । राजा का प्रजा से सम्बन्द पुत्रवत् होना चाहिए चूंकि प्रजा शब्द का अर्थ संतति होता है । तुलसीदास जी प्रजा के प्रति राजा की वात्सल्य भावना को ठीक समझते है । वहां पर स्वामित्व का दम्भ और अहंकार अपने आप लीन हो जाता है ।[106] राजा अपनी प्रजा से स्नेह करता है वह उसके सुख-दुःख का उत्तरदायी होता है । यदि राजा प्रजा पालक है तो यह स्वाभाविक ही होगां कि प्रजा भी उसे पिता तुल्य स्नेह दे बदले मे उसे भी पुत्रवत स्नेह

की प्राप्ति होगी । राजा केसभी कर्म इस प्रकार के हो जिनसे उसकी प्रजा का भला हो सके । जनकजी, दशरथजी, प्रतापभानु ये सभी राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत चाहते थे व प्रजा भी इन्हे अपना सर्वस्व समझती थी । यदि प्रजा को राजा से संतोष न हो तो वह उसे बदल भी सकती है यह प्राचीन काल से चला आ रहा है -

मुखिआ मुख सों चाहिए खान पान कहुँ एक
पालह पोषइ सफल अंग तुलसी सहित बिबेक[107]

राजा को प्रत्येक की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाए इसका ध्यान रखना चाहिए यदि किसी को उसकी इच्छित वस्तु नही मिल सकती है तो राजा का यह कर्तव्य है कि यह देखे कि क्या सचमुच यह उसकी आवश्यकता है या नही यह भी नही हो कि राजा स्नेह वश उसे उसकी अनावश्यक चीजें देता रहे । अतः यह भी कहा गाय है कि राजा में पितृत्व का गुण ही होना चाहिए मातृत्व का नहीं।[108] माँ अपने बच्चों को स्नेह की दृष्टि से देखती है । पिता अपनी विवेक दृष्टि से देखता है अतः विवेकी होना राजा का आवश्यक गुण है । राजा को प्रजा का पालन करने मे सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रजा हर तरह से दिन प्रतिदिन उन्नति करे । राज्य के विकास के लिए राजा प्रजा से कर ले पर उससे उसका ही पालन करे उसकी तुलना सूर्य से की गई है । सूर्य पृथ्वी पर के ही जल को अपनी किरणों से खींचता है पर किसी को पता ही नहीं चलता था परन्तु जब वही चल वर्षा के रूप में लौटाता है तो सबको पता चलता है कि वर्षा हो रही है । अतः उसे उनकी परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही कर ले । यदि फसल या व्यापार मे प्रजा को हानि हो तो उसकी सहायता करने मे तत्पर रहे । रामराज्य की प्रजा सुखी थी इसके विपरीत तुलसीदास जी के समसामायिक काल में प्रजा का पूरी तरह से शोषण हो रहा था राजा व नवाब केवल अपने भोग विलास व ऐशो आराम में लगे रहते थे और उनके इन क्रियाकलापों का असर प्रजा पर सीधा पड़ता था । तुलसीदास जीने इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मानस में राजा का प्रजापालक स्वरूप प्रस्तुत

किया प्रजा को राजा के दुःख सुख का भागीदार बनाया वे एक दूसरे को साथ लेकर चलते हैं । राजा के कर्मों से उसे प्रजा का प्रिय बनने की सलाह भी दी गई है । अयोध्या व जनकपुरी की प्रजा सुखी व समृद्ध भी वही लंका के राज्य में रावण अपने अहंकार के मद मे मदमस्त होकर अपने प्रजा रक्षक स्वरूप के स्थान पर प्रजा भक्षक रूप में प्रसिद्ध था । लोग उससे प्रेम नही करते थे उससे डरते थे वे उसके कोपभाजक नही होना पड़े अतः उसकी हां मे हा मिलाते थे । राम राज्य या दशरथराज्य मे प्रजा अपने मन की राजा थी । कैंकयी के गलतकार्य की टिप्पणी करने मे प्रजा जरा भी नही हिचकिचाती है ।

कैकयनंदिनी मंदमति कठिन कुटिल पनु कीन्ह[109]

पर राजा या मंत्री उन्हे कुछ भी नही कह सकते हैं । राम राज्य मे भी हमे प्रजातंत्र के ही दर्शन होते हैं - राज्य धर्म के सम्बन्ध मे भी राम का ही नाम लिया जा है यहाँ तक कि रामराज्य एक सुन्दर सुव्यवस्थित, प्रजा हितकारी राज्य के लिए प्रतिक बन गया है। तुलसी कालीन राज्यों व प्रजा की दशा से तुलसी अपरिचित नही थे इसीलिए उन्होंने उस काल के शासन को निरंकुश शासन की सज्ञा दी है । जहां प्रजा को राजा व राजा को प्रजा की चिन्ता न हो उसे कौन से राज्य का नाम दिया जाय इसमें दो मत नहीं होगे । जहां चारों ओर अराजक स्थिति हो वहां पर कलियुगीन राज्य ही कहा जा सकता है ।

वरना अयोध्या के राज्य मे तो प्रजा हर ढंग से सुखी थी राजा व प्रजा आपसी प्रेम ही था ।

रामराज बैठे त्रेलोका हर्षित भए गये सब सोका
बयरू नकर काहू सन कोई रामप्रताप विषमता खोई ।[110]

इस प्रकार राम व दशरथ प्रजा पालक थे । प्रजा भी उनका अनुसरण ही करती थी । तुलसी दासने कलियुग के चित्रण के साथसाथ

अपने समकालीन वातावरण को दर्शाते हुए उस काल के राजा व प्रजा के आपसी सम्बन्ध कैसे होना चाहिए इसे आदर्शरूप में प्रस्तुत किया है ।

मानस में सदैव तुलसीदास जीने नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना करने का प्रयास किया है व उसकी आदर्शयवस्था को जनमानस तक पहुँचाना चाहते थे । कोई भी जीवन मूल्य एक तरफा नही होते हैं उन्हें स्थापित करने मानसकार को अपने चरित्रों के मानदण्डों की एक नया ही स्वरूप देकर सुगठित करना पड़ा है । मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन से उस समाज की जो झाकी दिखाई देती है उस काल की जो संस्कृति का स्वरूप दिखाई देता उसे देखकर यही लगता है कि यह भारती संस्कृति का स्वरूप नही हो सकता है । अतः उसी प्राचीन गरिमामयी भारतीय संस्कृति की चेतना का जागृत करने के लिए उन्होंने रामराज्य का सहारा लिया लोगों की सुप्तावस्था से जगा कर उन्हे अपनी सांस्कृतिक धरोहर को पुनः प्रतिस्थापित करने का संदेश दिया । उन्होंने राम व भरत जैसे भाइयों का स्नेह, राम व सीता जैसे पति पत्नी का वर्णन करके पतन के गर्त में गिर रहे स्त्री पुरूषों को सामाजिक मर्यादा का संदेश दिया । दशरथ व कौसल्या जैसे पिता और माता हो ऐसी कामना की लक्ष्मण व शत्रुघ्न जैसे सेवाभावी भाई हो ऐसा संदेश दिया हनुमानजी जैसे सेवक दिए । वशिष्ठ जैसे कुलगुरू व गुरू दिए, शबरी निषाद, जैसे भक्त दिए जहां वर्णाश्रम के नियमों का पालन करना सिखाया । जहां पर सागर खुद अपने रत्न तट पर प्रजा के लिए डाल देवें ऐसे परोपकारी लोग बताये साथ ही बहुपत्नीवाद के दोष, अहंकार का अन्त बुरा होता है पर स्त्री पर बुरी नजर करनेवाले बालि व रावण शक्तिशाली होने पर भी अन्त मे पछताये यह बताया । इस प्रकार तुलसी दासजीने अपने मानस में नैतिक मूल्यों के साथ सांस्कृतिक चेतना को भी जागृत रखा ।

विद्रोह, नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु युद्ध युद्ध के प्रकार, अनेक स्तर की शत्रुताएँ बालि कैकई शूर्पनखा, रावण, कुम्भकरण अक्षयकुमार आदि । रामसीता का वनवास एवं अग्निपरीक्षा पति की सामाजिक एवं राजनीकि मर्यादाएँ प्रजा और राजा का दायित्व एवं अधिकार ।

विद्रोह :-

तुलसीदास के समय मे हिन्दु धर्म छिन्न भिन्न अवस्था मे था मुसलमान अपने धर्म की स्थापना हेतु हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे थे । चारों ओर अराजकता की स्थिति हो चुकी थी । उनके एक हाथ में कुरान व दूसरे हाथ में तलवार थी ।[1] हिन्दुओं की धार्मिकता को हर ओर से ठेस पहुंचाई जा रही थी । तुलसीदास की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि तुलसी उन परिस्थितियों से ही त्रस्त थे । इसी लिए उन्होंने राम के अवतार के बाद उस अराजक एवं विरोधी परिस्थिति को राम राज्य में परिवर्तित करना चाहा। उस परिस्थिति से निकलना ही तुलसी का लक्ष्य था मुसलमानों की तुलना उन्होने राक्षसों से की । मुसलमानों को भी हमारी धार्मिकता से विद्रोह, तुलसी ने राम चरित मानस में उन्होंने कई स्थानों पर विद्रोह का वर्णन किया है इस शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है - राज्य को हानि पहुँचानेवाला उपद्रव ।

राक्षस गण जो कार्य कर रहे थे वह इसी का एक स्वरूप था वे सब धर्म विरोधी थे । अन्यायी थे अतः उन सभी का धर्म व न्याय से विरोध था और इसी लिए वे प्राचीन संस्कृति के मान्य धार्मिक कार्यों से विद्रोह कर अपनी राक्षसी मनोवृत्ति का परिचय दे रहे थे । तुलसीदास ने रामचरित मानस में दुष्ट राजा का प्रतीक राक्षस राज रावण को माना है रावण वैदिक धर्मविरोधी और अन्यायी है वह वैदिक परम्परा के विरूद्ध गौ ब्राह्मणों की हत्या करवाता है ।

जेह विधि होई धर्म निर्मूला
सोसबकरहि बेद प्रतिकूला
जेहि जेहि देस धेनु दिज पावहिं
नगर गाउ पुर आगलगावहिं[2]

तुलीसदास जीने अयोध्या में भी राक्षणसों के उपद्रव का वर्णन किया है । जब विश्वामित्र राम लक्ष्मण को लेने आते हैं तब वे इसी राक्षसी विद्रोह का ही वर्णन करते हैं -

जहँ जप जग्य जोग मुनिकरहीं
अति मारी च सुबाहुहि डरहीं
देखत जग्य निसाचर छावहिं
करहि उपद्रव मुनि दुख पावहि[3]

और तुलसीदास जीने यही पर इस बात का संकेत भी दे दिया है कि तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ।[4]
रावण स्वयं भी यहां पर धार्मिक कार्य होते है ऐसा ज्ञात होने पर स्वयं जाकर उन्हे सताता था -
जप जोग बिरागा, तप मख भागा, श्रवन सुन इदससीस,
आपुनु उठि छावइ, रहेन पावइ धरि सब धालइखीसा,
असभ्रष्ट अचारा, भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना
ते हिबहु बिधि त्रासइ देस निकासइ, जो कह बेद पुराना ।[5]

इस प्रकार सारे राक्षस गण मुनियों व पूजा पाठ करनेवालों से विद्रोह क़र रहे थे ।

बरनि नजाइ अनीति
घोर निसाचर जो करहि
हिसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति[6]

इस प्रकार तुलसी दासजीने मानस में राक्षसी विद्रोह का वर्णन

किया है -

नैतिक मूल्यों कि स्थापना हेतु युद्ध -

युद्धों का वर्णन करने मे यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि युद्ध सदैव दो पक्षों में लड़े जाते हैं वे सदैव निर्णायक होते हैं । उनमे एक दूसरे पक्ष से अधिक बलवान है ऐसा ज्ञात होता है । राम रावण युद्ध के समय का तुलसी दास जीने वर्णन किया है वैसे तो राम ने बचपन से ही युद्धं में महारत हांसिल करना शुरू कर दिया था। उनके युद्ध सदैव मानवीय मूल्यों की पुनःस्थापना के लिए होते थे उन्होंने रावण से जो युद्ध किया था वह भी मानवीय मूल्यों की रक्षा करने के हेतु ओर एक नारी यानी की सीता के सतीत्व की रक्षा के लिए लड़ा था उनके पास इसमें धर्म का साथ था और रावण की ओर अधर्म बुराई थी । जिसके ही कारण उसे अपजस के साथ साथ मृत्यु भी प्राप्त हुई ।

तुलसीदास जीने अपने राम चरित मानस मे शुरू से अन्त तक नैतिक मूल्योंकी अवमूल्यना न हो जाय इस बात का ध्यान रखा है वे स्थान-स्थान पर इस बात की पुष्टि भी करते जाते हैं । उनका लक्ष्य यही था कि उनके समकालीन जो राज्य व राजाओं की स्थिति थी उसे अराजकता के सिवा और कुछ भी नहीं कहा जा सकता था । उस स्थिति के स्थान पर रामराज्य की कल्पना उन मूल्यों की स्थापना ही का हेतु था ।[7] यह सत्य था कि उस अराजक स्थितिका सामना प्रेम या स्नेह से नहीं हो सकता था क्योंकि मध्यकालीन इतिहास समाज, संस्कृति से पता चलता है कि वह सामन्ती समाज की अच्छाइयों बुराइयों का समय है ।[8]

रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समयमें यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत बड़े कौशल से किया है। राजनीति की इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से उबकर तुलसी दासजीने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है ।[9]

तुलसीकालीन शासन चूंकि हर तरह से जनता को दुःखी कर रहा था । तुलसी दास उसे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं - नृपपाय परायण धर्म नही

करिदन्ड विडंब प्रजा नितहीं

इस के अलावा गरीब की कमाई नौ राजकोषों में जाती थी और दरबारी शानशोकत मे वृद्धि होती थी ।[10] गरीब और गरीब बन जाते थे । इसी अवस्था को देखकर उन्होंने राजा को सूर्य के समान बनने का उपदेश दिया था ताकि वह जनता से कर ऐसे मे कि जनता को पता ही नही चले जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से जल ग्रंहण करता है पर उस समय किसी उसके इस कार्य का पता ही नही चलता है परन्तु जब वह जल वृष्टि करता है तो वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है ।[11]

भूप प्रताप भानु बल पाई,
कामधेनु भै भूमि सुहाई
सबदुखबरजित प्रजासुखारी
धरमसील सुन्दर नरनारी[12]

और

स्वबरूबिस्व करिबाहुबल, निजपुर कीन्ह प्रवेस
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समय नरेसु

यहां पर तुलसीदास ने उस काल की ईरानी भोगवादी संस्कृति के समक्ष मानस कालीन संस्कृति का उदाहरण रखते हुए यह स्पष्ट किया है कि- समस्त विश्व को अपनी भुजाओं के बल से अपने वश में कर राजा ने स्वनगर में प्रवेश किया राजा धर्म अर्थ काम आदि सुखों का समयानुसार सेवन करता था ।[13] धर्मरूचि मंत्री का भगवान के चरणों मे अनुराग था और वह सदैव राजा को नीतिप्रद व हितकारी शिक्षा ही देता रहता था । राजा भी गुरू देवता संत पितृो व ब्राह्मणों आदि की सेवा किया करता था, वेद विदित सभी धर्मों का पालन करता था व वेद व पुराणों का पठन करता था।

प्रजा की सेवा के लिए बावड़ियाँ कुएँ तालाब, पुष्प वाटिकाये बगीचे धर्मशालाएँ ब्राह्मणों के भवनों व मंदिरों का निर्माण कराया था ।[14]

इसके विपरीत रावण राज्य में मंत्रियों की नियुक्तियों के बाद उनसे कोई सलाह नही ली जाती थी माल्यवंत जो कि चतुरमंत्री था। उसका भी परामर्श रावण ने नही माना, नही विभीषण का ही कहना माना -

माल्यवंत अति सचिव सयाना,
तासु बचन सुनि अति सुखमाना
तात अनुज तवनीति विभूषण
सो उर धरहु जो कहत विभीषण,
रिपु उतकरष कहत सढ दोउ
दूरिन करहु इहाँ हइ कोऊ

विभीषन ने पुनः रावण को अपनी सीख दी कि -

सुमति कुमति सबके उर रहहीं
नाथ पुरान निगम अरु कहहीं
तव उर कुमति बसी विपरीता
हित अनहित मानहुरि प्रीता,
सुनत दसानन उठा रिसाई[15]
खलतोहि निकट मृत्यु अब आई

इस प्रकार तुलसीदास जीने मानस मे नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि मध्यकाल मे यह नही कहा जा सकता कि ज्ञानी व नीति को जाननेवाले लोग नही थे, परन्तु उनकी सुननेवाला कोई नही था । तुलसी इस समस्या का समाधान निकालना चाहते थे और इसीलिए उन्होने राम-राज्य मे सभी तरह नीतिनियमों को मानते हुए बताया है । तुलसी दासजीने एक ही मानस में दोनों प्रकार के राज्यों कि दशा का वर्णन किया है ।

दशरथ कहते हैं -

जो पांचहि मत लागेनीका, करहु हरषिहिय रामहि टीका यही नही चित्रकूट में भरत द्वारा राम को अयोध्यालौटा ले जाने की विनय को सुनकर मुनि वसिष्ठ भी राम से कहते हैं कि तुम वेदों और राजनीति के साथ साथ लोकमत और साधुमत को दृष्टिगत रखते हुए कार्य करो[16] भरत विनय सादर सुनिअं....... निचोरि[17]

वही पर रामराज्य मे भी अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी अपने राजतंत्र में प्रजा की सम्पत्ति एवं निर्णयों का पूरा ध्यान रखते हैं एवं उन्हे स्वयं निर्णय लेने का अधिकार देते हैं ।

सुनहु करहु जो तुम्हीहि सुहाइ,
जो अनीति कछु पायौ भाइ, तो मोहि बरजहु भयबिसराइ[18]

इस प्रकार तुलसी ने राजनीति के साथ-साथ सदैव नैतिक मूल्यों का भी ध्यान रखा है । तुलसी के राम अपने भक्तों के सामने भाई-भाई माता पुत्र पिता पुत्र सभी से आदर्श सम्बन्धों का भी निर्वाह करते हैं । उनका जीवन मर्यादाओं से रचापचा है वे सभी को प्रिय है उनके लिए विश्वानाथ त्रिपाठी का कथन है देशकाल सापेक्षता और उसके सन्दर्भ में तुलसी का अध्ययन करने में उनके राम की मानवीयता करूणा उनका शील संकोच और दीनबन्धुत्व समझ मे आता है । तुलसी राम को अन्याय के विरोध में खड़ा करते है उच्चतर मूल्यों से जोड़ते हैं इसीलिए राम अपने वीरत्व में भी सुन्दर लगते हैं ।[19]
स्यामगात सिर जटा बनाए, अरुण नयन शर चाप चढाए

तुलसी के राम मध्यकाल के उखड़े उखड़े इतिहास में सबको जैसे अपने उच्चतम मानवमूल्यों से सबको ललकारते हैं । तुलसी ने रामको कलियुग के समाधान के रूप में देखा है । यह सत्य है कि कलिकाल केवल कवि की कल्पना नही है जोकि पुराण काल से चली आ रही है वरन तुलसी की आंखों देखी मध्यकालीन भयानक वह संसार है जो अपनी सम्पूर्ण यथार्थता में उनके समक्ष उपस्थित

है और इसी का समाधान वे मानस के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते हैं और इसीलिए तुलसी ने हर उस मानदण्ड का अपनी मानस में समावेश किया है जो कि कलीयुगी जनता को सच्ची व सीधी बातों के द्वारा नैतिकता व मर्यादा सिखा सकें हर संकट से उबार सके उन्हें भवसागर से पार करवा सकें । राम जितनें सहज व सरल है उतने ही कठोर भी है आततायिओं को वे कभी नही छोड़ते हैं । इसीलिए उन्होने मारीच सुबाहु ताड़का आदि से युद्ध करके उन्हे यमपुरी पहुँचा देते हैं । उसके बाद विश्वामित्र उन्हे सारी विधाएँ समर्पित कर देते हैं । वे आयुध उन्हे मुनि देते हैं जो बाद में बालि व अन्य राक्षस गण एवं रावण के वध के समय काम मे आनेवाले होते हैं। राम बाद में विराघ का वध करते हैं -

पुनि रघुनाथ चले बन आगे
    अस्थि समूह देखि रघुराया
निसिचर निकर सकल मुनिखाये,
    निसिचर ही नकर उमहि भुज उठाई प्रण कीन्ह[20]

शूर्पनखा के साथ वार्तालाप के समय भी राम अपने नैतिक मूल्यों को नही भूलते हैं । वह तो अपने दुष्ट हृदय के अनुसार ही गलत आचरण करती है । लक्ष्मण उसकी नाक व कान काट करके रावण को चुनौती देते हैं यहां पर अधर्म को धर्म की ओर से चुनौती दी जा रही है । अतः यह युद्ध जो कि अब हो रहा है वह भी नैतिक मूल्यों के लिए था चूंकि वे सीता को ले जाना चाहते थे स्त्री के सतीत्व के प्रश्न पर होना वाला युद्ध भी आवश्यक ही था राम उसमें भी विजयी होते हैं ।[21] जब रघुनाथ समर रिपु जीते, सुरनर मुनि सब के भय बीते[22] - इधर शूर्पनखा अपने भाई रावण को सीता व राम लक्ष्मण के बारे मे बताती है और यह भी स्पष्ट करती है कि उनके पराक्रम का वर्णन नही किया जा सकता है -

समुझि परीं मोहि उन्ह कै करनी
    रहित निसाचर करहहिं धरनी

जिन्ह कर भुजबल पाई दसानन
अभय भए बिचरत मुनिकानन
देखत बाल काल समाना
परमधीर धन्वी गुरूनाना

इस प्रकार शूर्पनखा राम-लक्ष्मण के बल से रावण को परिचित करवाती है यह भी कहती है कि श्वरदूषन को दल के व त्रिशरा के सहित मार डाला है रावण यह सब सुनकर यह समझ करके कि यदि वे इतने बलशाली है तो भी मुझसे तो नही जीत सकेंगे व यदि वे पर ब्रह्म है तो क्यों नही उनसे युद्ध करके मोक्ष पद प्राप्त करूं । यहां पर राम सीता को अपनी नर लीला के बारे में कहते हैं व लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सीता को अग्नि में रखते हैं -

तुम पावक महँ करहु निवासा
जौ लगि करौ निसाचर नासा ।।

इस प्रकार राम लक्ष्मण के रावण से युद्ध की भूमिका तैयार की जाती है । चूंकि यह भी नैतिक मूल्यों के लिए लड़ा जाना था । सीता हरण का सहारा लिया गया । क्योंकि यदि नैतिक मूल्यों का हनन नही हो तो युद्ध की अवश्यकता ही नहीं हो । इसीलिए युद्ध को आवश्यक बनाने के लिए सीता का हरण किया जाता है । स्वर्णमृग के पीछेराम का जाना सीता की परछाई रूपी सीता का मर्मबचन कहना जिन्हे सुनकर लक्ष्मण लक्ष्मण का राम के पीछे जाना । सभीं कुछ तुलसीदास जीने अपनी मानस में पहले से ही स्पष्ट कर दिया है । उस काल मे स्त्री हरण आम बात समझा जाता था राजा किसी की भी स्त्री का हरण करवा देते थे । इसीलिए तुलसी ने उस अन्याय को रोकने के लिए राम व रावण के चित्रण में सीता को वापस लाते समय रावण व उसके सभी पुत्रों का वध किया व विभिषण को राज्य दिया । यह राम का धर्मयुद्ध था । जौ नैतिक मूल्यों कि स्थापना के लिए लड़ा गया था ।

युद्ध के प्रकार :-

युद्धों को कई तरह से विभाजित कर सकते हैं -

जब पैदल सेना आपस में युद्ध करती है तो उसे पैदल सेना का युद्ध कहा जाता है । ये सेनाएँ आपस में अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होती है यह नियम है कि पैदल सैनिक के सामने पैदल सैनिक ही आयेगा । रावण की सेना के पास अनेकों प्रकार के अस्त्र एवं शस्त्र थे जिनमें धनुष बाण भिन्दिपाल, सांगी (बरछा) तोमर मृदंग, फरसा, शूल दुधारी, तलवार एवं परिथ मुख्य है ।[23]

नानायुद्ध सर चायधर जातु धान बलवीर

या चले निसाचर आयुस भागी - इसी सेना का सामना राम की सेना मुख्यतः वृक्षों की जड़ें व पहाड़ों के टुकडों व नाखूनों से करती है प्रचण्ड बन्दर भालु पर्वत खण्ड लेकर किले पर डालते हैं । इसी प्रकार पैदल सेना युद्ध करती है ।[24]

इसके अलावा तुलसी ने युद्धों में समकालीन तोप व गोले आदि के प्रयोग को अनदेखा नही किया है जैसे कि राम रावण युद्ध में राक्षस सेना ढुर्ग के कगूरों पर चढकर बानर सेना पर पत्थर व गोलों की वर्षा करती है । मुगल भी तोपो व बन्दूकों का प्रयोग करते थे । तुलसी ने उससे भी प्रेरणा ली थी ।

ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला - गोला और बारूद आदि अस्त्रों में धनुष नाग फांस, आदि का उल्लेख तुलसी ने किया है । राम मेघनाथ के युद्ध में इसका उपयोग हुआ था । इसे आसुर युद्ध कहा गया है ।

द्वन्द्व युद्ध जिसमें आमने सामने खड़े होकर करनेवाले युद्ध को द्वन्द्व युद्ध कहा जाता है । राम तथा रावण मे द्वन्द्व युद्ध ही हुआ था ।

कटि सिर भुजबार बहु मरतनभट लंकेस[25]
खैचिसरासन श्रवन लागि, छाड़े सर एकतीस

रघुनायक सायक चलें मानहुकाल फनीस

इतने युद्ध अलावा प्रकाश युद्ध जिसमें देश काल को निश्चित करके जहां युद्ध घोषणा की जाती है । इसमे सभी कार्य पहले से तय किया जाता है ।

कूट युद्ध-धोखा देकर भयभीत करना दुर्गों को गिराना आग लगाना प्रमाद या व्यसन के समय आक्रमण करना एक स्थान पर शान्ति की घोषणा करके दूसरे स्थान पर धोखे से भार काट करना दुर्गों को गिराना, मुगल काल की आम बात थी, वे धोखे से युद्ध ज्यादा करते थे । तृष्णी युद्ध-विष द्वारा या औषधि आदि के प्रयोग से गुप्तचरों के द्वारा बहलाकर या शत्रु. का वध किया जाय । अलग अलग लोगों ने अलग-अलग प्रकार के नाम दिये हैं ।

शुक्रने दैविक युद्ध - जिसमें मंत्रों से प्रेरित महाशक्तिशाली बाण आदि से युद्ध किया जाय । इसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । आग्नेय अस्त्र, नागपाश ये सभी अस्त्र मंत्रोच्चार के बाद छोड़े जाते थे ।

युद्ध मानव युद्ध मे भी दो भेद है । बाहुबल या शस्त्रबल दोनो से ही लड़ा जाता है । वैसे कहा है रथी को रथी से गजारोही को गजारोही से अश्वारोही को अश्वारोही से पैदल को पैदल से युद्ध करना चाहिए । समानरूप से शक्तिशाली व्यक्ति के साथ ही युद्ध करना चाहिए । कहा गया है बाल खोले हुए सोता हुआ, कवनचविहिन निराश, युद्ध को देखनेवाले खाना खाते हुए, भयभीत व पलायेन करते हुए का व बालक स्त्री व वृद्ध इन सभी का वध नही किया जा सकता है ।[26] इस प्रकार शस्त्रों से युद्ध में ब्रह्मास्त्र का उपयोग राक्षस लोग ज्यादा करते थे। रावण व मेघनाद शक्ति चक्र एवं धनुष वाण से अधिक युद्ध करते थे । तुलसीदास जीने सेना को सभी अस्त्रशस्त्र प्रदान किये है ।

आकाश युद्ध-योद्धा लड़ते-लड़ते आकाश में चढ़ जाते थे । मेघनाद ने अपने मायामय रथ में उड़कर वज्रवत अट्टहास किया था जिससे वानर सेना में आतंक छा गया । राक्षसगण इच्छानुसार रूप धारण कर लेते थे व अन्तर्धान हो जाते थे, ऋक्ष वानरों के प्रधान भई

आकाश में राक्षसों का पीछा कर सकते थे । रावण ने कई बार माया से राम और लक्ष्मण के दल रच दिये थे जिन्हे नष्ट करना के वल रामही को आता था । इस प्रकार रावण वे मेघनाद ने वानर सेना के हृदयों में आतंक भर दिया था ।

जब कीन्ह जेहि पाखन्ड भए प्रगट जन्तु प्रचन्ड
बतालभूत पिसाच कर धरे धनु नारा[27]

इस प्रकार से माया का प्रचार करने लगा राम ने अपनी सेना को भाग में देखा तो -

रघुबीर एक हीती कोपि निमेष महु

रावण की माया से -

काटे सिर भुज बार बहु, भरत नभट लकेस[28]

विभीषण से अमृत कुन्ड का रहस्य ज्ञात होने पर राम ने उसे सुखा दिया उसके बाद एक साथ तीस बाणों से उसका शरीर छिन्न भिन्न कर दिया व उसकी सारी माया को हर लिया ।[29]

सायक एक नाभि सर सोपा, ऊपर लगे भुज सिर करि रोषा
लै सिर बाहु चले नाराचा, सिर भुज ही नरूंड महिनाचा[30]

इस प्रकार प्रभु ने रावण का अन्तकरा !

वायुयान :- इसी रामचरित मानस मे तुलसी ने वायुयानों का भी वर्णन किया है । देव गण कभी कभी पुष्पवर्णा करते दिखाये गए हैं । रावण ने वायुयान मे ही सीता का हरण किया था । राम व सीता लक्ष्मण व वानरसेना पुष्पक विमान मेही अयोध्या गई थी । यह कुबेर का था जो कि रावण ने छीन लिया था । रावण व मेघनाथ के रथ भूमि व आकाश मे एक समान ढाति से उठते थे राम के पास रथ नहीं था और जब विभीषन को यह देख कर दुःख हुआ तब राम ने उसे अपने रथ का विवरण दिया[31] और कहा कि-

सौ रज धीरज तेहि रथ चाका, सत्यसील दृढ ध्वजा पताका
कवच अभेदवि प्रगुरूपूजा
एहि सम विजय उपाय न दूजा

अनेक स्तर की शत्रुताएँ :-

तुलसीदास जीने अपने मानस में अनेकों प्रकार से मित्रों व शत्रुओं का वर्णन किया है जिसमें उन्होने विभिन्न प्रकार की शत्रुताएँ भी बताई है । शत्रु जरूरी नही होता कि बहुत बड़ा ही हो शत्रु छोड़ा होकर भी बड़ा नुकसान कर सकता था । मंथरा को हम अयोध्या के परिवार की शत्रु के रूप में देखते ही वही बूढी थी कुबडी थी, दासी थीं परन्तु उसने कौशल्या से जो उसकी स्वाभाविक ईर्षा [32] थी उसी का दर्शाते हुए राम राज्यतिलक को राम बनवास में बदल दिया था दूसरे प्रकार के शत्रु राक्षस गण थे उनका ध्येय मुनियों को सताना था वे केवल इसी भाव से शत्रुता करते हैं [33] कि धार्मिक कार्यों मे विघ्न आते रहे व पृथ्वी पर अराजकता फैलती रहे । शूर्पनखा को राम व लक्ष्मण से इसलिए शत्रुता थी क्योंकि वे उसकी इच्छाओं को पूर्ण नहीं करते हैं और इसीलिए उसने रावण को सीता हरण के लिए उकसाया बालि से सुग्रीव को भाव्रवत ईर्षा थी चूंकि उसने उसका राज्य व पत्नी दोनो ही छीन ली थी ।[34] विभीषण को भी रावण से इसी प्रकार की शत्रुता थी क्योंकि उसने भी अनीति पर चलकर उसका अपमान किया था व उसे निर्वासित कर दिया था ।[35] राम की रावण से शत्रुता इसी लिए थी कि उसने पृथ्वी पर आतंक मचा रखा था, सीता हर णकर लिया था उनके बी चतो खाई धनुष भंग से ही होने लगी थी । जब रावण धनुष को छु भी नही पाया[36] और राम ने उसी धनुष को तोड़ दिया वही पर से तुलसी ने सभी दुष्ट राजाओं की शत्रुता का आरम्भ बता दिया था ।[37] अन्त में राम व लक्ष्मण के कारण रावण सेना व राम सेना की आपसी शत्रुता की व्याख्या भी जरूरी है जब स्वामी का मित्र मित्र ही होता है तो स्वामी का शत्रु भी शत्रु ही होगा । तुलसी दास जीने इस प्रकार सारे शत्रुओं का वर्णन करते हुए इस बात को स्पष्ट किया है कि

ये सारी शत्रुताएँ केवल मानवीय व नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु ही थी । जितने भी शत्रुओं के प्रखार है उन सभी में निज स्वार्थों की पूर्ति ही मुख्य है जहां निःस्वार्थता है वहां पर शत्रुता का सवाल ही नहीं उठता है । रावण के माध्यम से उस काल की अराजक स्थिति का वर्णन तुलसी ने किया है । भाई भाई पिता पुत्र माता-पुत्र सभी तो आपसी शत्रुताएँ करते थे ।[38] शासकवर्ग अभिमानी अत्याचारी तथा क्रूर था उनका एकमात्र लक्ष्य स्वार्थ सिदिध था । पुत्र पिताका भतीजा चाचा का भाई भाई का शत्रु बना हुआ था । वे इस घात में लगे रहते थे कि मौका लगते ही कब हत्या करें और शासन पर अधिकार प्राप्त करें । गोस्वामी जीने इसी राजनीतिक अव्यवस्था को दूर करने के लि रामराज्य की कल्पना की थी ।[39]

बालि :-

बालि को तुलसी ने एक ऐसे पात्र के रूप में चित्रित किया है जो महा बलशाली है परन्तु विवेक शून्य है उसने अपने ही भाई के पत्नी व राज्य छीन लिया था । सुग्रीव व बालि की आपसी शत्रुता का आरम्भ एक गलती की वजह से हुआ था । जिसमें बालि सुग्रीव को दोषी मानता है । जबकि वह निर्दोष था बालि ने जिस भाई को पुत्रवत रखना चाहिए था उसी से शत्रुवत व्यवहार किया था । व नीति का उल्लंघन करके जिस भाई की पत्नी को पुत्रवत रखना चाहिए उसी को अपनी पत्नी बना लिया था । अतः यहां बालि को पराक्रमी के साथ साथ दम्भी के रूप में चित्रित किया है । यहसच है कि मरते समय उसने अपने सारे कपट छोड़ दिये थे । परन्तु सुग्रीव के प्रति क्रोध व ईर्षा भी बालि के अहं का कारण ही इस द्वेष को बढ़ाता है । यहां पर तुलसी बालि को संस्कृति के विरोधी के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं । बालि को तुलसी ने एक स्नेहशील पिता के रूप में भी स्थापित किया है -[40] अंत में बालि अपने पुत्र व पत्नी को राम को सोंप देता है ।

कैकई :-

इस की रचना कते समय तुलसीदास कही भी यह नहीं भूले हैं कि कैकयी वही है जो राम को अपने प्राणों से अधिक प्यार करती है और इसी लिए उन्होंने इस नारी का चरित्र चित्रण करते समय भाग्य व सरस्वतीजी को सहायक बनाया है ।

नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकइ करि ।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ।।[41]

कैकयी सभी तरह से योग्य थी यहां तक कि वह युद्धों में भी साथ मे जाती थी ऐसे ही युद्ध में उसे दो वर देने की बात हुई थी जो उसने (1) भरत को राज्य (2) राम को वनवास के रूप में मांग लिया था । यह सत यहै कि ये सारी क्रियाएँ देवताओं द्वारा रची पची हुई थी यदि राम का वन गमन नहीं होता तो सीताहरण का सवाल नहीं उठता और फिर पृथ्वी पर भार स्वरूप रावण का अन्त करने का मौका रम को नहीं मिलता । इसीलिए राम ने कभी कैकई से द्वेष नहीं रखा । वे जानते थे कैकई माता ने तो उनकी सहायता ही कि है । इसीलिए वे सर्वप्रथम कैकई से ही मिलते हैं । भरत जैसे पुत्र ने भी कैकई को भला बुरा कहा है यहां तक कि अजसपिटारी भी कह दिया पर कैकई भाग्य के आगे लाचार थी । तुलसी ने रामचरित मानस में कैकई को स्वयं पर ग्लानि करते हुए दिखाया है व सदैव दूर खड़ी रहकर अश्रुपात करती बताया है । कैकई अपने दोनों वरों के माध्यम से राक्षस वंशों के नाश की भूमिका बनाती है इसे तुलसीदास जीने स्पष्ट कहा है ।

शूर्पनखा :-

उसे तुलसी ने एक स्वेच्छाचारी राक्षस नारी के रूप में चित्रित किया है । चरित्र की निर्बल नारी के रूप में तुलसी उसको युद्ध का कारण बनातें हैं । शूर्पनखा यदि अपनी मनोभावनाओं पर नियंत्रण रखती तो उसकी दुर्गति नही होती नही राक्षसवंश जड़ से निर्मूल होता

पर इस चारित्र की सृष्टि करके तुलसी दासजीने यह सिद्ध कर दिया कि नारी यदि नंद मतिहों तो वह अनर्थ का कारण बनती है ।[42]

यदि पति वृत्त धर्म का पालन करनेवाली नारी हो तो ऐसी दुर्गति ही न हो पर रावण की बहन होने के कारण उसका रावण ही की तरह से आचरण करना स्वाभाविक ही था । वह अपने भाई विभिषण की तरह न होकर केवल रावण की ही तरह से क्रियाकलाप करती है क्योंकि दोनों एक ही प्रकार की मानसिकता वाले थे ।

रावण :-

रावण के चरित्र का चित्रण करते समय तुलसी दासजी आरम्भ मे ही प्रताप भानु की कथा को आधार बनाते हैं जिससे पाठकों को यह स्पष्ट हो जाये कि रावण जो कुछ कर रहा है वह केवल ब्राह्मणों के श्रापों का असर है ।

बोलि बिप्र सकोच तब नहिं कछु कीन्ह विचार,
जाई निसाचर होहु नृप मूढ सहित परिवार [43]
रावन नाम बीर बरि बंडा[44]

यही नही जब शूर्पनखा उसके पास आती है तब यह विचार करता है कि यदि भगवान का अवतार हुआ है तोअपने जीवन का अन्त उन्हीं के हाथों से हो ऐसी क्रियाएं करू ताकि वे समय कि आवश्यकता जानकर स्वयं मेरा वध करें ।[45]

होइहि भजनु नतामस देहा ।

इसके अलावा भी नारद का श्राप भी इस के मूल मे था[46] रावण वैसे प्रकांड पंडित था उसकी तरह राजनीतिज्ञ कोई नहीं था। वह सब कुछ श्रापवश होकर करता है वह शिवजी का भक्त भी है परन्तु वह उस ब्राह्मणों के श्राप से क्रोधित रावण द्विज विरोधी हो गया था ।[47] रावण व वैश्रवण, कैकसी का पुत्र था पर उसकी

माँ राक्षसी थी अतः यहीं पर से सुर-असुर संघर्ष का आरम्भ होता है । रावण का मानव शरीर दो विरोधी तत्वों के अनन्त संघर्ष के लिए युद्ध क्षेत्र बन जाता है । उनके माता पिता का विवाह भी अनमेल विवाह था । अतः रावण शुरू से ही हीनता में बड़ा होता है । यही हीनता दुष्टता में परिणित हो जाती है । युद्धों में वह यह सिद्ध करने का प्रयास करता रहता है कि वह सक्षम है पर आन्तरिक रूप से निर्बल हो जाता है ।[48] सीता हरण के पश्चात व उन्हे अपने महल में नहीं रखता है उन्हें अशोक वाटिका मे रखता है यहां तुलसी अपने समसामायिक वातावरण के सामने एक आदर्श स्थापित करते हैं । वह सीता पर बलात अपनी विचारधारा थोपता नही है उन्हें एक मास की अवधि प्रदान कर लौट आता है । मंदोदरी के कहने पर भी अपने आन्तरिक भावों को प्रकट नहीं करके एक कपट आवरण ओढे रहता है । व जनसामान्य के समक्ष इस बात को प्रस्तुत करा है कि भौतिक वैभव विलास क्षणभंगुर होते हैं अन्त मे तो राम की कृपा ही आवश्यक होती है -

तासु तेज समान प्रभु आनन, हरषेदेखि संभु चहुरानन

रावण को देवताओं ने अपने माध्यम से अनाचारी व आतङ्घायी बना दिया था । तुलसी भी उस काल के राजाओं की तुलना रावण से करते थे और इसीलिए उन्होंने जो कुछ भी कलिकाल में देखा वही उन्होने लंकाकाण्ड में लिखा । भौतिक वादी सभ्यता जो तुलसी केसमसामायिक थी उसी का चित्रण उन्होंने लंका के वर्णन में उपयोग मे लिया । रावण ने अपने विरोधी स्वरूप में यह सिद्ध कर दिया था कि उसे देव दनुज मे से कोई भी नही मार सकता था व नर तो कोई इतना पराक्रमी नही सकता है अतः उसके लिए स्वयं विष्णु को नर रूप लेना पड़ा । उसने तपस्या करके सारी सिद्धियां प्राप्त करती थी जिनसे ही उसने विश्व विजय किया । रावण को हम एक ऐसे राजा के रूप में देखते हैं जिसमें सभी गुण व अवगुण दोनों ही थे वह सभी प्रकार के युद्ध में निपूर्ण था । मायाजाल भी उसे आता था ।[47] पूरी पृथ्वी पर उसने विजय प्राप्त की थी । परन्तु

जहां सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि[2] से देखा जाता है रावण एक दुरुचारी व आततायी ही सिद्ध होता है । उसने यक्षो से भी लंका को छीन लिया था[3] वह सदैव स्त्रीयों का हरण करता था व विरोधी जातियों से संघर्षरत रहता था । इस प्रकार रावण का चरित्र अलग ही प्रकार का था । जिससे तुलसी ने मुगलकालीन राजाओं के साथ तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया है ।

कुम्भकरण :-

इसके चरित्र मे भी तुलसी ने श्राप को कारण माना है । यह इतना अधिक विराट था कि ब्रह्माजी को सभी देवताओं ने कहा कि यदि यह हमेशा खाता रहा तो पृथ्वी पर से सबकुछ नष्ट हो जायेगा इसी लिए उन्हे इन्द्रासन मागने पर निद्रासन दे दिया ताकी वह छ माह सोए व छ माह जागे । इस प्रकार व सीताहरण के सोया हुआ रहता है इसको तुलसीदास जीने स्पष्ट किया है । रावण जब कुम्भकरण के पास आता है और उसे सारा वृतान्त सुनाता है तो वह पहले रावण पर क्रोधित होता है -

सुनि दसंकधर बचन तब कुभकरन बिखलात
जगदंबा हरि आनि अबसढचाहत कल्यान
अजहुँ तात त्यागि अभिमाना भजहुराम हो रहि कल्याना[48]

यहां कुम्भकरण को विवेकी बताया है उसे यह ज्ञात है कि सीता माता जगत भाता है और वह रावण कहता है परन्तु रावण के द्वारा विरोध करने पर स्वयं प्रभु के चरणों में चला जाता है व लौकिक रूप से लीलाएँ करने लगता है । उसकी बजह से सारी वानर सेना भागने लगती है व हाहाकार मच जाता है । यहां कुम्भकरण विभिषण से मिलना नही भूलता है, वह धन्य धन्य ते धन्य विभिषण कह कर उसे मिलता है । अपनी तरफ से वह रावण की ओर से युद्ध जरूर करता है व अपनी निष्ठा मे कमी नही आनंदी है पर उसका हृदय तो श्रीराम के चरणों मे लगा रहता है । इस प्रकार

से कुम्भकरण को एस ऐसे राक्षस के रूप में चित्रित किया है जिसे अपने श्राप के स्मरण के साथ-साथ प्रभु भक्ति में भी ध्यान है ।

अक्षयकुमार :-

अक्षयकुमार रावण का पराक्रमी पुत्र ता जो सदैव युद्धों में जाने के लिए व्याकुल रहता था । तुलसीदास ने उसका बहुत अधिक चित्रण नही किया है परन्तु यहां पर हम वाल्मीकि रामायण को आधारग्रन्थ मानते हुए उसके चरित्र का वर्णन करेंगे । वह अपने पिता की आज्ञा ही की प्रतिक्षा कर रहा था कि रावण उसे अशोक वाटिका मे जाने की अनुमति प्रदान करें । उसका धनुष स्वर्णजडित था उसका स्वयं का तेज़ भी अतुलनीय था । उसके नेत्र सिंह के समान भयंकर थे उसके पास दिव्य रथ था जिसे उसने बड़ी तपस्या के द्वारा प्राप्त किया था । उस रथ में सभी अस्त्र शस्त्र यथा स्थान रखे हुए थे । उस रथ को लेकर जब वह वहां पर पहुँचता है तो उसे हनुमानजी के पराक्रम को देखकर क्रोध आता है पर वह अपने क्रोध को हनुमानजी पर प्रहार करके प्रकट करता है । उन दोनों के युद्ध को देखकर भूतल के सारे प्राणी चीख उठते हैं ।[49] वह निशाना साधने धनुष पर बाण को चढाने व उसे निर्धारित लक्ष्य की ओर छोड़ने में माहिर था उनके युद्ध से सूर्य का ताप कम हो गया, वायु स्थिर हो गई, पर्वत हिलने लगे आकाश में भयंकर शब्द गूजने लगे व समुद्र में तुफान आने लगे । उसने हनुमान जी पर विषधर सर्पों के समान भयंकर, सुवर्णमय पंखों से युक्त तीखें अग्रभाग वाले तीन बाण हनुमानजी के मस्तक पर मारे । इससे बुद्ध होकर हनुमानजी ने अपने शरीर को बडा करके उसके प्रहारों को सहना चालु कर दिया व यह सोच करके कि बालक तेजस्वी है पर इसको मारना आवश्यक है । उन्होने उसे पैरो से पकड़कर हजारों बार पवन मे घुमाते हुए युद्धभूमि मे पटक दिया व उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गये इस प्रकार एक पराक्रमी रावण पुत्र का अन्त हुआ ।[50]

राम सीता का वनवास :- हम पहले ही इसे स्पष्ट कर चुके हैं कि

राम सीता का वनवास केवल एक राजघराने का षडयंत्र नही था वह तो एक पूर्व निर्धारित दैविक विधान था जिसके अनुसार ही राम को राज्याभिषेक के स्थान पर वन गमन दिया जाता है । राम चूंकि स्वयं विष्णु के अवतार थे और उन्हे केवल पृथ्वी पर से राक्षसों का संहार करना था इसी लिए उन्हें नररूप लेना पडा था क्योंकि रावण ने अपने वरदान मे देव दनुज से नही मरने का वर ले लिया था ।[51] बानर मनुज जाति दुइ बारे । सीता भी चूंकि विष्णु जी नर रूप में आनेवाले है । अतः नारी के रूप में जनकजी के यहां पर भमि में से प्राप्त होती है ।[52] इस प्रकार जब राम उन्हे धनुषभंग के बाद प्राप्त करते हैं और उनका विवाह होता है तब सभी लोग सुख का अनुभव करते हैं ।[53] परन्तु जब दशरथ जी राम को युवराज पद देने का आग्रह [54] करते है तब देवताओं को ऐसा लगता है कि उनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पायेगा ऐसे में वे सरस्वती जी के पास जाकर मंथरा की जिव्हा मे निवास करने व राम को वन गमन के लिए भेजने का आग्रह करते हैं ।[55] इस प्रकार राम व सीता के वनवास की भूमिका बनाई जाती है मंथरा के द्वारा कैकयी को उकसाना उसे अपने दो वर मागने के लिए राजी करना । कैकयी को अपजस की पिटारी बनाना इस प्रकार देवीदेवताओं के व पृथ्वी के आग्रह पर राम सीता को वनवास दिया जाता है । यदि व राज्य मे रहते तो तुलसी के सांस्कृतिक समन्वय के स्वरूप को आधार ही प्राप्त नही होता राम सीता के वनवास के माध्यम से राक्षसों का नाश करना ही तुलसी का उद्देश्य नही था उनके द्वारा हर वर्ग में ऊँचनीच बिना स्नेह व प्रेम की सरिता बहाना उनकालक्ष्य था वे भरत को जितना प्रेम करते हैं वनवासियों को भी उतना ही आदर देते हैं । जितना अयोध्या वासियों को देते हैं वे स्वयं सभी ऋषियों के यहां जाते हैं और अपना अवतरित होने का प्रयोजन भी स्पष्ट करते हैं। यही राम व सीता के वनवास का भी प्रयोजन था । सीता का हरण ओयोध्या मे रहकर तो नही हो सकता था इसी लिए उन्होने उन्हे भी वनवास मे साथ रखा । जब उन्हे सीता को अग्नि में रखना था तब वे लक्ष्मण को भी जगल मे भेज देते हैं यह बात केवल

तीन व्यक्ति यानें राम सीता व अग्निदेव ही जानते हैं और जब वे लंका से उन्हें वापस लाते हैं । तब उन्ही अग्नि मे से सीता के स्वरूप को वापस ले लेते हैं यही इस अग्निपरीक्षा का उद्देश्य था।[56]

पति की सामाजिक व राजनीतिक मर्यादाएँ :-

तुलसी ने काल में सर्वत्र अराजक स्थिति ही थी नर नारी भी अपनी मर्यादाओं को भूलकर स्वच्छन्द हो चुके थे । अतः तुलसी ने मुगल काल की दुर्दशा को देखते हुए इस रामचरित मानस मे पति के सामाजिक व राजनैतिक दायित्व कितने अधिक महत्वपूर्ण होते हैं उनका स्पष्टीकरण किया है । जब राम को वनवास मिलता है तो वे सर्वप्रथम सीता को घर पर रहने का कहते हैं चूंकि उनका दायित्व था कि सीता सुखपूर्वक रहे फिर उनकी तीव्र इच्छा व नरलीला का प्रयोजन सिद्ध करने हेतु ही वे उन्हे साथ ले जाते हैं मुगल काल मे अपहरण बहुत होते थे । लोग अपनी पत्नी का हरण हो जाने पर हाथ पर हा रखकर बैठ जाते थे ऐसे में तुलसी ने उन सभी को धर्म युद्ध करने की प्रेरणा दी । मुगल राजा अपने हरमों में हिन्दुओं कि बहने बेटियों को उठवा लेते थे । यह उसी काल की घटनाएँ थी जिसे तुलसी दासजी ने पौराणिक कथा का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया है । पति को अपने राजनैतिक जीवन में अपनी पत्नी के सुख दुखों की उपेक्षा नही करनी चाहिए । जितना प्रजा के उपर ध्यान वह देता है उतनी ही प्रजा सुखी होती है साथ ही साथ उसे अपने परिवार व अपनी पत्नी के प्रति अपने केर्व्यों को नही भूलना चाहिए परन्तु राजा दशरथ की तरह से उसे आपने राज्य के प्रति जो कर्तव्य है उन्हें भूलना भी नही चाहिए । राजा दशरथ अपनी पत्नी के हाथों अपने देश का ही बुरा करते चूंकि वे वर के आधीन थे । अतः उन्होंन राज्य के भविष्य के बारे में कुछ भी नही सोचा । राजा को अपनी प्रजा का पालन करते हुए यह भी ज्ञात रहेकि उसका धर्म राज्यधर्म भी है ।

राजा व प्रजा के दायित्व :-

राजा को प्रजा का रक्षक होना चाहिए भक्षक नहीं । उसे अपने निज स्वार्थों की पूर्ति के लिए देश का अहित नहीं होने देना चाहिए। किसी राजा की श्रेष्ठता को उसकी प्रजा के सुखी व समृद्धि से ही पता करते हैं [57] जिस प्रकार रोजा का दायित्व उसकी प्रजा को सुखी रखना उसकी उत्तरोतत्र उन्नति करवाना होता है राजा दायित्व होता है कि वह प्रजा में अच्छे संस्कारों का सिंचन करें उन्हें इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सके ऐसी व्यवस्था करें गुरूकुल पाठशालाएँ आदि का निर्माण करें जहां पर कि उनकी प्राचीन संस्कृति का ज्ञान उन्हे प्राप्त हो सके । दुष्टों को दण्ड देकर उन्हें सुधारें अधर्मी आततायीओं को नष्ट करें उन्हें देश में अनाचार न फैलाने दे, राम ने राक्षस गणों को पृथ्वी पर ही से नष्ट कर दिया था । क्योंकि यह सत्य है कि दुष्टों की संख्या सज्जनों से दस गुना होती है[58] इसीलिए राजा की आवश्यकता सामाजिक एवं राजकीय व्यवस्था की स्थापना व संरक्षण करता रहे राज्य में गाँव ब्राह्मणों को व ऋषि मुनियों को कष्ट न हो वरना धर्म की हानि होती है । राजा का दायित्व होता है कि वह लोगों को अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में रत रखे दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप न करने दे । राजा का दायित्व यह भी होता है कि वह धर्म का स्वरूप विकृत न होने दे वरना अधर्म की विजय व धर्म का नाश होने लगेगा । राजा सारे राज्य का एक माली की तरह से पालन करे। उचित कर लेवें सूर्य की तरह से (सभी को प्रकाश प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था रखे) सबको सुख प्राप्त हो ऐसा संचालन करें । चाटुकारों से दूर रहे, किसी से भी मिलने से न हिचके एक पत्नीव्प्रत का पालन करते हुए ग्रहस्थ धर्म का महत्व स्थापित करें ।[59] प्रजा भी राजा के सुख में अपना सुख समझे, समय पर अपने कार्य करें, दूसरों को हानि न पहुचायें राज्य के नियमों का पालन करे । अपने देश या राज्य की उन्नति मे बाधक न बने शत्रुओं से सावधान रहें व राजा को अनुशासित करके यदि राजा निरंकुश हो जायेगा तो राज्य भी नष्ट हो जायेगा । प्रजा राजा को पितातुल्य

आदर देवें उसके पारिवारिक जीवन में अधिक हस्तक्षेप न करे उसे अपने स्वधर्मों का भी पालन करने दे । अपनी सांस्कृकि धरोहर की रक्षा कर राज्य की वस्तुओं को नष्ट न करें । पिछले अध्यायों में प्रजा व राजा के सम्बन्धों मे भी इन्ही बातों का समावेश हुआ है। अतः उनको दोहराना आवश्यक नही प्रतीत होता है । प्रजा को ईश्वर के स्वरूप मे राजा का दर्शन करना चाहिए उसे अपने राजा के सुखों के लिए अपना सर्वस्व त्यागने की इच्छा होनी चाहिए । राजघराने की पीड़ा को अपनी स्वयं की पीड़ा से अधिक समझना चाहिए । तुलसी ने प्रजा का सुख राजा का सुख व प्रजा का दुःख राजा का दुःख माना है । समय समय पर प्रजा को अपने राजा के पास जाकर उसके अच्छे कार्यों का धन्यवाद भी देना चाहिए ताकि उसे यह ज्ञात रहे कि उसके हर कार्य का प्रजा पर क्या प्रभाव पड़ता है । राजा व प्रजा को एक परिवार की भांति रहना चाहिए । प्रजा को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना चाहिए जब उसे ऐसा लगे कि उसके अधिकारों का हनन हो रहा है तो वह राजा को सर्वप्रथम उससे अवगत करें यदि फिर भी राजा न सुधरे तो वह उसके स्थान पर दूसरे राजा का चुनाव कर सकती है ।